मलिक मुहम्मद जायसी

डा० कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल्०

साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

केइ न जगत जस बेंचा,
केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह सुने कहानी
हम्ह सँवरे दुइ बोल॥

भूमिका

भाग्य के थपेड़ों ने मुझे उस जगह पर ला दिया है जहाँ पर कि मनुष्य अपने को ही पहिचानना भूलने लगता है और अक्सर अपने से पूछने लगता है कि क्या मैं वही हूँ ? जीवन के धुँधले प्रभात में गति को अनिवार्य मानकर मैं जहाँ से चला था इतनी मंज़िलें चलकर यही सोचा करता हूँ कि इतना चलने के बाद भी मैं वहीं पर क्यों हूँ ? कविता से मुझे चिढ़ है लेकिन स्वयं लिखने का प्रयास करता हूँ, कहानी को आज के संसार में फैली अशान्ति का एक बड़ा कारण मानता हूँ लेकिन स्वयं लिखता हूँ और आलोचना ! आलोचना को तो मैं बहुत ही निकृष्ट मानता हूँ—मेरा विचार है कि जिस लेखक की जितनी अधिक आलोचना की जाती है वह उतना ही अधिक अभागा है और मैं स्वयं मलिक मुहम्मद जायसी की आलोचना आज कर रहा हूँ। न जाने क्यों मेरे वैयक्तिक आदर्शों से मेरा जीवन एकदम विपरीत है ? लोगों को शिकायत रहती है कि उन को कोई समझता नहीं लेकिन मुझे परेशानी है कि मैं स्वयं अपने को नहीं समझ पाता।

नियति की यह विडम्बना शायद मृत्यु के एक क्षण पहले तक दूर नहीं होगी। जीवन मुझे एक क्षण भर को भी शान्ति नहीं लेने देगा। इसलिये मैं भी जीवन को एक क्षण के लिये भी शांति नहीं लेने देता। हम दोनों में समझौता नहीं हो सकता। समझौता कराने के लिये एक मध्यस्थ की आवश्यकता है। हम दोनों ने ही मिलकर एक मध्यस्थ खोज निकाला है। वह है—पुस्तकालय। लेकिन यह मध्यस्थ बड़ा ही हृदयहीन है। वह मुझे और मेरे जीवन दोनों को ही खाए जा रहा है। हम दोनों अपना क्रमिक विनाश देख रहे हैं। लेकिन लाचारी है। जब तक कोई और मध्यस्थ नहीं मिलता इसे हटाया नहीं जा सकता।

इसी विषमता और अशांति के बीच यह पुस्तक लिखी गई है। अपनी उन कटु परिस्थितियों का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता जिन्हों ने इस पुस्तक को लिखने का मुझे अवसर अथवा प्रेरणा है। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का भी मैं कृतज्ञ हूँ जो इस पुस्तक लिखने में अज्ञात रूप से उत्साह बढ़ाते रहे हैं। श्रीमती चंद्रकला व का भी मैं एहसानमंद हूं जिन्हों ने इस पुस्तक में कहीं-कहीं पर सहाय दी है। मैं श्री ए० जी० शिरेफ का विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्हों ने जाय की ओर मुझे विशेष आकर्षित किया है। विद्या वद्दिन ने इस पुर के सही छपने में अत्यधिक अस्वस्थ होते हुए भी सहायता दी है। उन का स्नेह है। परम पूज्य डा० अमरनाथ झा, डा० ताराच डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० रामकुमार वर्मा का तो मैं इतना अ ऋणी हूँ कि जन्म-जन्मांतर तक वह ऋण चुका नहीं सकूँगा। श्री भक्ति प्रसाद केशवलाल त्रिवेदी असिस्टेण्ट लाइब्रेरियन इलाहा यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्हों ने मुझे प्र विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में अध्ययन करने की अत्यधिक सुवि दी हैं। पं० रुद्रमणि मिश्र के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापन करत जिन्हों ने मुझे पुस्तकालय में पुस्तकें खोज निकालने में बहुत अ सहायता दी है। वे तो स्वभाव से ही संत हैं।

मेरे हिन्दी साहित्य के अध्ययन के शैशव काल में मुझे उँग पकड़कर चलाने वाले स्वर्गीय भाई रामप्रसाद नायक की याद बराबर अभी तक कार्य करने की प्रेरणा देती रही है। मैं जो अभी तक कर सका हूँ या आगे कर सकूँगा उस का बड़ा श्रेय उ का है।

१३८, मधुपुर,
इलाहाबाद

कमल कुलश्रेष्ठ
३१-३-४७

परम श्रद्धेय विद्या-वारिधि

डा० ताराचंद एम० ए०, डी० फिल्० (आक्सन)

वाइस-चांसलर, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी

के श्री-चरणों में

सस्नेह भेंट

विषय-क्रम

१ — विषय-प्रवेश

(पृष्ठ १—७८)

विषय-क्रम

१ — विषय-प्रवेश

(पृष्ठ १—७८)

२—विचार पक्ष

(पृष्ठ ७६-१३१)

३—काव्य पक्ष

(पृष्ठ १३३-३२२)



संकेत-चिन्ह

जा० ग्रं० = जायसी ग्रंथावली

ना० प्र० प० = नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका

१

विषय-प्रवेश

जीवन-वृत्त

§१—मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन-वृत्त जानने के लिए उपलब्ध सामग्री को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) अंतर्साक्ष्य

(२) बहिर्साक्ष्य

§२—अंतर्साक्ष्य में कवि के विषय में हमें निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं—

१—भा औतार मोर नौ सदी ।[1]

२—आवत उधत-चार विधि ठाना ।
भा भूकंप जगत अकुलाना ॥
धरती दीन्ह चक्र-विधि भाईं ।
फिरै अकास रहँट कै नाईं ॥
गिरि-पहार मेदिनि तस हाला ।
जस चाला चलनी भरि चाला ॥
मिरित-लोक ज्यों रचा हिँडोला ।
सरग पताल पवन-खट डोला ॥
गिरि पहार परबत ढहि गए ।
सात समुद्र कीच मिलि भए ॥

८—एक नयन जस दरपन औ निरमल तेहि भाउ ।
सब रुपवंत पाउँ गहि मुख जोवहिं कै चाउ ॥[1]

९—मुहमद बाईं दिसि तजा एक सरवन, एक आँखि ।[2]

१०—सैयद असरफ पीर पियारा ।
जेहि मोहिं दीन्ह पंथ उजियारा ॥......
ओहि घर रतन एक निरमरा ।
हाजी सेख सबै गुन भरा ॥
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे ।
पंथ देइ कहँ दइउ सँवारे ॥
सेख मुहम्मद पून्यों करा ।
सेख कमाल जगत निरमरा ॥[3]

११—गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा ।
चलै उताइल जेहि कर खेवा ॥
अगुवा भए सेख बुरहानू ।
पंथ लाइ मोहि दीन्ह गियानू ॥
अलहदाद भल तेहि कर गुरू ।
दीन दुनी रोसन सुरखुरू ॥
सैयद मुहमद कै वै चेला ।
सिद्ध पुरुष संगम जेहि खेला ॥
दानियाल गुरु पंथ लखाए ।
हजरत ख्वाज खिजिर तेहि पाए ॥
भए प्रसन्न ओहि हजरत ख्वाजे ।
लिये मेरइ जहँ सैयद राजे ॥[4]

१२—मानिक एक पाएउँ उजियारा।
सैयद असरफ पीर पियारा॥[1]

१३—पा—पाएउँ गुरु मोहिदी मीठा।
मिला पंथ सो दरसन दीठा॥
नांव पियार सेख बुरहानू।
नगर कालपी हुत गुरु थानू॥
औ तिन्ह दरस गोसाईं पावा।
अलहदाद गुरु पंथ लखावा॥
अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला।
सैयद मुहमद के वै चेला॥
सैयद मुहमद दीनहिं साँचा।
दानियाल सिख दीन्ह सुवाचा॥[2]

१४—चारि मीत कवि मुहमद पाए।
जोरि मिताई सिर पहुँचाए॥
यूसुफ मलिक पँडत बहु ज्ञानी।
पहलै भेद बात वै जानी॥
पुनि सेलार कादिम मतिमाहाँ।
खांड़े दान उभै निति बाहाँ॥
मिया सलोने सिंघ बरियारू।
बीर खेतरन खड़ग जुझारू॥
सेख बड़े, बड़ सिद्ध बखाना।
किए आदेस सिद्ध बड़ माना॥
चारिउ चतुरदसा गुन पढ़े।
औ संजोग गोसाईं गढ़े॥[3]

१५—सेरसाह देहली - सुलतानू ।[1]
१६—बाबर साह छत्रपति राजा ।[2]
१७—ना-नारद तव रोइ पुकारा ।
एक जोलाहै सौं मैं हारा ॥[3]

§३—अंतर्साक्ष्य के इन उद्धरणों के आधार पर हम नीचे लिखे निष्कर्ष निकाल सकते हैं ।

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 'नव सदी' में हुआ था। इन के जन्म के समय एक बहुत बड़ा भूचाल आया था और एक बहुत बड़ा सूर्य-ग्रहण पड़ा था। मलिक मुहम्मद जायसी जायस नगर में आकर बसे थे। वहाँ आने के थोड़े दिन बाद ही वे संसार से विरक्त हो उठे। जायस का पहला नाम 'उद्यान' था।[4] इन का नाम मुहम्मद था और

[1]ज० ग्रं०पृ० ६

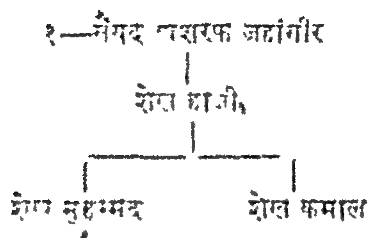
[2]वही पृ० ३८६

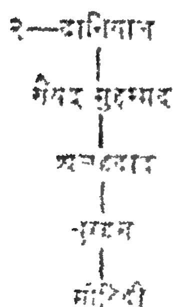
[3]वही पृ० ३७४

[4]जायस के निवासी उदयनगर का संबंध उद्दालक मुनि से जोडते हैं, जिन की चर्चा महाभारत आदि ग्रंथों में आई है। उद्दालक का अर्थ शहद भी होता है। संभव है, यह नगर पहले शहद के लिए प्रसिद्ध हो। कुछ लोगों का मत है कि यह उद्यान नगर का बिगड़ा हुआ रूप है। संभव है कि पहले यह जगह उद्यानों के लिए प्रसिद्ध हो। कुछ लोग इस का नाम उजालिक नगर भी देते हैं। इस विषय में देखिए—अवध गज़टियर भाग १., डिस्ट्रिक्ट गज़टियर (रायबरेली), दे: ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी आव एंशियेण्ट एण्ड मेडीवल इंडिया.

जायस शब्द 'जैश' शब्द से बिगड़कर बन सकता है। फारसी में 'जैश' का अर्थ पड़ाव होता है। शायद मुसलमान यहाँ पर आकर रहे हों। इससे 'जैश' से बिगड़कर इस का नाम 'जायस' पड़ गया हो। दूसरे शब्द 'जा-ए-ऐश' से भी इस का संबंध हो सकता है, जिस का अर्थ 'खुशी या आराम की जगह' होता है। शायद मुसलमानों की सेना ने कभी यहाँ पर आराम किया हो। तीसरे शब्द 'जाएस्त' से भी इस का संबंध हो सकता है, जिस का

शायद इन की बाईं आँख और बायां कान कुछ दिनों के बाद शक्तिहीन हो गए थे। इन की गुरुपरंपराएं इस प्रकार थीं—





हो सकता है कि वे पहली गुरु-परंपरा में भी सैयद अशरफ जहाँगीर के ही शिष्य हों। इन के चार मित्र थे—मलिक यूसुफ, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख। ये चारों बड़े विद्वान् थे। इन में मलिक यूसुफ बड़े ज्ञानी थे। सालार कादिम बड़े वीर पुरुष थे और तलवार चलाने में विशेष सिद्ध-हस्त थे। मियाँ सलोने भी सालार कादिम के समान ही वीर योद्धा थे। बड़े शेख विशेष सिद्ध पुरुष थे। उन्हों ने बाबर और शेरशाह का ज़माना देखा था। कबीर इन से पहले हुए थे।

इस के अतिरिक्त जायसी ने अपने विषय में और कुछ संकेत नहीं दिए।

§४—बहिर्साक्ष्य में निम्न सामग्री हमें प्राप्त होती है—

(१) सम-सामयिक सामग्री

(२) बाद की सामग्री

§५—सम-सामयिक सामग्री में दो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं—

(१) जायसी का मकान[1]

(२) जायसी की क़ब्र[2]

§६—बाद की सामग्री में निम्न लिखित वस्तुएँ हमें प्राप्त हैं—

(१) जायसी के विषय में उल्लेख

(२) जायसी का चित्र

(३) जायसी के विषय में जन-श्रुतियाँ तथा उन के आधार पर किए गए उल्लेख

जायसी के विषय में जिन लेखकों ने उल्लेख किए हैं, उन में सब

[1]यह मकान हमें जायसी के बारे में कोई भी बात निश्चयपूर्वक नहीं सुझाता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह मकान जायसी का ही है।

[2]जायसी की क़ब्र के विषय में भी कोई बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। वैसे यह उन के जीवन पर कोई महत्वपूर्ण प्रकाश नहीं डाल सकती।

मलिक शेख हाफिज के वंशज आज भी जायस में रहते हैं।[१] जायस के एक शेख के पास एक वंश-वृक्ष भी है। परंतु वह वंश-वृक्ष आधुनिक होने के कारण सही नहीं प्रतीत होता[२] और जनश्रुतियों से पैदा हुआ और जनश्रुतियों को पैदा करने वाला है। यह कहा जाता है कि इन के माता-पिता की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी।[३]

बचपन—कहा जाता है कि बचपन में माता-पिता की मृत्यु के बाद ये फकीरों और साधुओं के साथ रहने लगे थे।[४]

विवाह—इस विषय में जनश्रुति दो प्रकार की है। एक तो इन का विवाह मानती है और दूसरा नहीं। पहली का कहना है कि मलिक साहब एक फ़कीर थे, उन्हें शादी-विवाह से कोई ताल्लुक न था। और दूसरी इन का वंश बतलाती है। परन्तु कहती है कि इन के पुत्र मकान के नीचे दबकर मर गए थे।[५]

दोस्त—मलिक मुहम्मद के चार दोस्तों के बारे में भी कुछ जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। मलिक यूसुफ मलिक पट्टी मुहल्ला कंचाना के जमीदार थे। इन के वंश में कोई भी नहीं है।[६] सालार खादिम सालार पट्टी के रहने वाले थे और शाहजहाँ के वक्त तक जीवित रहे। वे पुत्रहीन थे। इन की लड़की के खानदान के कुछ लोग कंचाना कलां मुहल्ले में बसे हुए हैं। ये वैसे मामूली हैसियत के ज़मीदार थे और साथ ही साथ बुद्धिमान तथा तलवार के धनी थे। ये दानी भी थे।[७] मियाँ सलोने नाम के तीन व्यक्ति जायसी के समय में जायस में रहते

[१] वही

[२] ना० प्र० प० भाग २१, पृष्ठ ४२। इसकी चर्चा आस्किन्दर साहब ने भी की है।

[३] वही पृष्ठ ४३

[४] वही भाग २१, पृष्ठ ४३

[५] वही पृष्ठ ५०। कहा जाता है कि इन के ७ लड़के थे जो कि गुरु के शाप से मर गए थे। आगे इस की चर्चा की गई है।

[६] वही पृष्ठ ५२

[७] वही

थे। तीनों सज्जनता, वीरता और प्रभुता में अद्वितीय थे। जनश्रुतियों में तीनों का स्नेह संबंध हमारे कवि से पाया जाता है। इन में एक तो हमारे कवि के रिश्ते में भाई बताए जाते हैं और एक बहनोई।[1] शेख बड़े नाम के पाँच व्यक्ति कहे जाते हैं।[2]

अमेठी से संबंध—कहा जाता है कि जायसी की दुआ से अमेठी के राजा के एक पुत्र हुआ था, जिसके कारण वह इन पर बड़ी श्रद्धा रखने लगा था।[3] एक दूसरी जनश्रुति यह भी बतलाती है कि एक चेला अमेठी में जाकर इन का नागमती का बारहमासा गा-गाकर भीख माँगा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने उस बारहमासे को सुना। उन्हें उनका यह भाग विशेष अच्छा लगा।

कँवल जो बिगसा मानसर बिन जल गएउ सुखाय।
सूखि बेलि पुनि पलुहै जौं पिउ सींचै आइ॥

राजा ने फकीर से पूछा, 'शाह जी, यह किस ने लिखा है?' उस चेले ने मुहम्मद जायसी का नाम लिया। राजा ने उन्हें अपने यहाँ बुलवाया और उन का विशेष सम्मान किया।[4]

मृत्यु—मृत्यु-काल के विषय में कुछ छोटे-छोटे उल्लेख हैं, जो कि जन-श्रुतियों के ही आधार पर हैं। उनके अनुसार इन की मृत्यु १५४२ ई०[5], १६३९ ई०[6] या १६५९ ई०[7] में हुई थी। कहा जाता है कि योग के बल से मलिक मुहम्मद अन्य पशुओं के रूप धारण कर लिया करते थे। एक बार इन्हों ने अमेठी के राजा से कहा कि वे किसी

[1] वही पृष्ठ ५३-५५
[2] वही पृष्ठ ५५-५६
[3] वही पृष्ठ ५८
[4] जा० ग्रं० (भूमिका) पृष्ठ १५
[5] सैयद काज़ी नासिरुद्दीन ने १५४२ ई० दिया है। देखिए ना० प्र० प० भाग २१, पृष्ठ ५८
[6] मुंशी गुलाम सरवर लाहौरी ने १६३९ ई० दिया है। देखिए खज़ीनतुल असफ़िया पृष्ठ ४७३
[7] १६५९ ई० के लिए देखिए ना० प्र० प० भाग २१, पृष्ठ ५८

शिकारी की गोली से मरेंगे। राजा ने इन के आसपास के जगल में शिकार की मनाही कर दी। परंतु एक शिकारी एक बार उस जंगल से लौट रहा था कि उसे एक बाघ की गरज सुनाई पड़ी। आत्म-रक्षा में उस ने गोली चला दी। पास जाकर देखा तो बाघ के स्थान पर मलिक मुहम्मद पड़े हुए थे। अमेठी के राजा ने वहाँ पर इनकी कब्र बनवा दी।[1]

अन्य घटनाएँ—इन के विषय में कुछ घटनाएँ भी प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि ये बिना किसी को खिलाए स्वयं भोजन नहीं करते थे। एक दिन जब इन की लौंडी इन के लिए खीर लेकर आई तो इन्हें एक कुष्टी दिखलाई पड़ा। उसे कोढ़ चू रहा था। जायसी ने बड़े आग्रह के साथ उसे खाने के लिए राजी किया। वह खाने बैठा। उस के कोढ़ का थोड़ा-सा मवाद भोजन में गिर पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिए उठाया। पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा कि इसे मैं खाऊँगा। परंतु जायसी उसे झट खा गए। इस के पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया है। कहा जाता है कि इस घटना का संकेत जायसी ने अखरावट के इस दोहे में किया है—

> बुंदहि समुद समान यह अचरज कासों कहौं।
> जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु महँ॥

कहा जाता है कि इन्हों ने पोस्तीनामे में अफीमचियों का खाका खींचा था। जब वह इन्हों ने अपने अफीमची पीर को सुनाया तो उन्हों ने शाप दिया कि तुम्हारे सातों बच्चे छत गिरने से मर जाएँगे। अन्त में ऐसा ही हुआ। बाद में पीर ने इन्हें क्षमा कर भविष्यवाणी की कि तुम्हारा नाम तुम्हारी चौदहों रचनाओं से चलेगा।[2]

कहा जाता है कि ये बदसूरत थे। एक बार ये शेरशाह के दरबार में गए। वहाँ पर शेरशाह तथा उन के दरबारी इन्हें देखकर हँस पड़े।

[1] ना० ग्रं० (भूमिका) पृष्ठ ९ [2] ना० प्र० प० भाग २१ पृष्ठ ५७

जायसी ने शीघ्र ही उनसे पूछा—'हँसे हँसे कि मटिये।' यह सुनकर सारे दरबारी चुप हो गए और उन्होंने उनसे क्षमा माँगी।[1]

कहा जाता है कि एक बार ये अपने गुरु के पैर दाब रहे थे। इन के मस्तिष्क में यह विचार आया कि कितने ही व्यक्ति इसी प्रकार इन की सेवा करते रहे होंगे और शिक्षा पूरी करके चले गए होंगे। गुरु ने इन के मन का विचार जान लिया। उन्हों ने इन्हें अमेठी जाने की आज्ञा दी। ये वहाँ चले गए और बस गए। वहाँ पर अमेठी के राजा ने इन का बड़ा सम्मान किया।[2]

जनश्रुति में पाई जाने वाली ये घटनाएँ लगभग सर्वथा अविश्वसनीय हैं।

§७—इस सामग्री के आधार पर हम मलिक मुहम्मद जायसी का निम्नलिखित प्रामाणिक जीवन-वृत्त पाते हैं—

(१) नाम—इन का नाम मुहम्मद[3] था।

(२) जन्म-स्थान—इन का जन्म-स्थान संभवतः जायस ही था।[4] जायस नगर का आदि नाम उद्यान था।[5]

(३) जन्म-तिथि—जायसी का जन्म ९०६ हिजरी में हुआ था। जायसी ने यह बात आखिरी कलाम में स्पष्ट बतला दी है। वे कहते हैं—

नौ सौ बरस छतिस जब भए।
तब एहि कथा के आखर कहे॥[6]

[1] इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज़ (१९३०) पृष्ठ ३२८

[2] ना० प्र० प० भाग १४, पृष्ठ ४१२

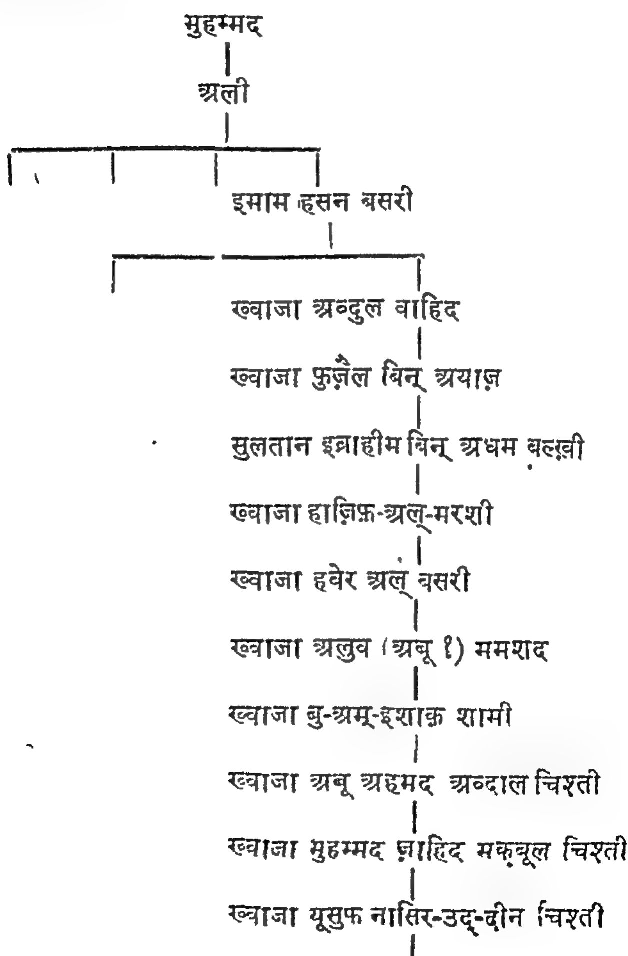
[3] अंतर्साक्ष्य के आधार पर

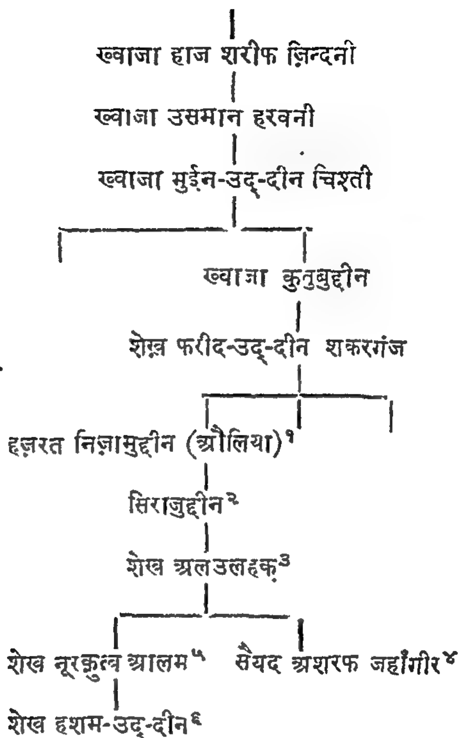
[4] इस विषय में जो सामग्री उपलब्ध है, वह परिस्थिति को बिलकुल स्पष्ट नहीं कर पाती। नवीन सामग्री प्राप्त होने पर कुछ मौलिक एवं निश्चित प्रकाश इस विषय पर पड़ सकेगा।

[5] आ० ग्रं० पृष्ठ ३८७

[6] वही पृ० ३८८

अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह परंपरा इस प्रकार स्थापित होती है—





[1] रोज़: ग्लासरी अव पंजाब ट्राइब्ज़ एण्ड कास्टस् भाग १ (१९११) पृष्ठ ५२७

[2] अब्द-अल्-हक़: अखवार-अल-अख़यार (१९१४) पृष्ठ ८६

[3] वही पृष्ठ १४३

[4] रयू: केटलाग अव परशियन मेन्युस्क्रिप्ट्स इन ब्रिटिश म्यूज़ियम भाग १ (१८७९) पृष्ठ ४१२

[5] वही

[6] अब्द-अल्-हक़: अखवार-अल्-अख़यार (१९१४) पृष्ठ १७६

२—रचनाएं

§ १—जायसी की रचनाओं की निम्न नामावली हमें मिलती है—

१. पद्मावती[1]	१०. मोराई नामा[10]
२. अखरावट[2]	११. मुकहरा नामा[11]
३. आखिरी कलाम[3]	१२. मुखरा नामा[12]
४. संखरावत[4]	१३. पोस्ती नामा[13]
५. चंपावत[5]	१४. मुहरा नामा (होली नामा)[14]
६. इतरावत[6]	१५. नैनावत[15]
७. मटकावत[7]	१६. स्फुट छंद[16]
८. चित्रावत[8]	१७. कहार नामा[17]
९. खुर्वा नामा[9]	१८. मेखरावट नामा[18]

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५, पृष्ठ ५७

[2] वही

[3] वही

[4] वही

[5] वही

[6] वही

[7] वही

[8] वही

[9] वही

[10] वही

[11] वही

[12] वही

[13] वही

[14] वही

[15] जा० ग्रं० (भूमिका) पृष्ठ १६

[16] सैयद कल्बे मुस्तफ़ा : मलिक मुहम्मद जायसी (१९४१) पृष्ठ १६४

[17] नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १४ पृष्ठ ४१८

[18] वही

परंपरा प्रतीत होती है। अतः ये पंक्तियां भी सर्वथा अविश्वसनीय हैं। वैसे पोस्तीनामे के विषय में एक जनश्रुति भी पाई जाती है कि मुबारक शाह बोदले चंडू बहुत पिया करते थे। कवि ने उन्हीं को लक्ष्य में रख कर यह ग्रंथ लिखा था। उन्हों ने शाप दिया था कि तुम्हारे लड़के घर की छत गिरने से मरेंगे। किन्तु बाद में क्षमा करते हुए इतना जोड़ दिया था कि लड़के तो बच नहीं सकते, हाँ, तुम्हारा नाम तुम्हारी चौदह किताबों द्वारा चलता रहेगा। कहा जाता है कि कालांतर में ऐसा ही हुआ।[1] वे चौदह किताबें ऊपर दी गई इक्कीस पुस्तकों में अंतिम सात छोड़कर शेष बताई जाती हैं।[2] 'नैनावत' एक प्रेम कहानी कही जाती है।[3] इन पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ स्फुट काव्य भी मिलता है परंतु वह विश्वसनीय नहीं है।[4] कहार नामा और मेखरावट नामा के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। शायद मटकावत नामा तथा मेखरावट नामा तथा मुकहरानामा और मुखरानामा दो ही ग्रंथ हों।

§३—संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मलिक मुहम्मद जायसी के लिखे हुए ग्रंथों में हमें तीन ग्रंथ ही उपलब्ध हैं।

§४—पद्मावती—इस ग्रंथ का नाम प्रायः विद्वानों ने पद्मावत[5],

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५, पृष्ठ ५७

[2] वही

[3] जा० ग्रं० (भूमिका) पृष्ठ १६

[4] स्फुट काव्य के कुछ उद्धरण कल्बे मुस्तफा ने दिए भी हैं। देखिए सैयद कल्बे मुस्तफा: मलिक मुहम्मद जायसी (१९४१) पृष्ठ १६४–६। ला० सीताराम अवध गज़ेटियर के आधार पर सात ग्रंथ स्वीकार करते हैं। परंतु नाम नहीं देते। देखिए इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज़ जिल्द ६, भाग १, पृष्ठ ३३१

[5] देखिए नवल किशोर प्रेस, लखनऊ का १९२० का छठवां संस्करण

पदुमावति[1] या पदमावत[2] दिया है। अवधी भाषा के सामान्य नियमों के अनुसार इस का नाम पदुमावति अधिक सही है। तत्समता के दृष्टिकोण से इस का नाम पद्मावती होना चाहिए। 'पदमावत' किसी भी दृष्टिकोण से विशेष सही नहीं है।

पद्मावती का रचना-काल अंतर्साक्ष्य में जायसी ने इस प्रकार दिया है—

सन नौ से सैंतालिस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।[3]

हिजरी सन् ९४७ ईसवी सन् १५४० में पड़ता है।[4] साथ ही साथ कवि ने शेरशाह को सामयिक राजा के रूप में प्रशंसा भी की है।[5] शेरशाह का राज्य काल लगभग १५४० ई० से ही प्रारंभ होता है।[6] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ९४७ सन् सही है।

परंतु अंतर्साक्ष्य की इस पंक्ति को विद्वान एक दूसरी तरह भी पोथियों में पाते और लिपि दोष के कारण पढ़ते हैं—

सन नौ सै सत्ताइस अहा।[7]

हिजरी सन् ९२७ ईसवी सन् १५२० ई० के लगभग पड़ता है।[8] इस समय इब्राहीम लोदी राज्य कर रहा था, शेरशाह नहीं।[9] इस

[1] ग्रियर्सन तथा सुधाकर द्विवेदी ने यह नाम दिया है।

[2] पं० रामचंद्र शुक्ल ने यह नाम दिया है।

[3] ग्रियर्सन तथा सुधाकर द्विवेदी, पदुमावति, (१९११) पृष्ठ ३५

[4] बरनेबी : एलिमेंट्स अव ज्यूइश एण्ड मुहमडन कैलेण्डर्स (१९०१) पृष्ठ ४९१

[5] जा० ग्रं० पृष्ठ ६-७

[6] ईश्वरीप्रसाद : ए शॉर्ट हिस्ट्री अव मुस्लिम रूल इन इंडिया (१९३९) पृष्ठ ३१८

[7] जा० ग्रं० पृष्ठ १०

[8] बरनेबी : एलिमेण्ट्स अव ज्यूइश एण्ड मुहमडन कैलेण्डर्स (१९०१) पृष्ठ ४९१

[9] ईश्वरीप्रसाद : मैडीवल इंडिया (१९४५) पृष्ठ ५०६

कारण सामयिक राजा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा नहीं जमती। विद्वान् यह मानते हैं कि कवि ने यहां पर 'अहा' शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है कि—

कथा अरंभ बैन कवि कहा।[1]

अर्थात् कथा के आरंभिक वचन कवि ने कहे थे। बाद में जब कि सारा ग्रंथ लिख डाला गया तो शेरशाह के समय में कवि ने उस की भूमिका लिखी। उस में भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करते हुए प्रारंभ-काल दिया और सामयिक राजा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा की।

प्रस्तुत लेखक ९२७ के पक्ष में एक और नया तर्क पेश करता है। 'आखिरी कलाम' का अर्थ होता है—कवि की आखिरी रचना। आखिरी कलाम का रचना काल अंतर्साक्ष्य के आधार पर निर्विवाद रूप से ९३६ हि० है।[2] जब कवि ने अंतिम रचना ९३६ हि० में बनाई तो ९४७ हि० में पद्मावती की कथा आरंभ ही कैसे की होगी।[3] इस प्रकार ९४७ हि० लिपि या प्रतिलिपि का दोष मात्र है। कवि ने पद्मावती की रचना का प्रारंभ ९२७ हि० में ही किया होगा। जायसी की यह रचना लोकप्रिय रही है। इस कारण इस के अनुवाद बंगला,[4] पश्तो,[5]

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ १०

[2] नौ सौ बरस छत्तिस जब भए।
तब यहि कथा के आखर कहे।
—जा० ग्रं० पृष्ठ ३८८

[3] बंगला अनुवाद में 'सप्त विंश नव शत' (९२७) मिलता है। यह अनुवाद जायसी के लगभग १२५ वर्षों के उपरांत हुआ था। देखिए जा० ग्रं० (भूमिका) पृ० ७

[4] दिनेशचंद्र सेन : ए शार्ट हिस्ट्री अव बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर (१९११) पृष्ठ ६२२

[5] नसीरुद्दीन हाशमी : यूरुप में दकनी मख़तूतात (१९३२) पृष्ठ ११८-१४०
इस पुस्तक में उर्दू, फारसी आदि के बहुत से अनुवादों की चर्चा इंडिया आफिस लाइब्रेरी, ब्रिटिश म्युज़ियम तथा बर्लिन के पुस्तकालयों के हस्तलिखित पोथियों के संग्रह के आधार पर है। इस विषय पर ज्ञानचंद

फारसी,[1] उर्दू[2], खड़ी बोली हिंदी[3], फ्रेंच[4] तथा अंगरेजी[5] में किये गए हैं। मूल पद्मावती के निम्न संस्करण प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं—

१. जायसी ग्रंथावली—सन् १६२४ ई० में पंडित राम चंद्र शुक्ल ने पद्मावती तथा अखरावट का एक संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित करवाया। इस के पाठ में किन हस्तलिखित प्रतियों का प्रयोग हुआ है, इस का कोई भी निर्देश इस में नहीं है। इस कारण इस के पाठ के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वैसे इस का पाठ एकाध स्थल को छोड़कर सुपाठ्य है, भले ही सही न हो।

२. पदुमावति—सन् १६११ ई० में पं० सुधाकर द्विवेदी तथा ग्रियर्सन ने बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी से इस का पहला भाग सूली खंड तक प्रकाशित करवाया था। यह संस्करण सटीक है और अपने मोटे टाइप तथा मोटे कागज के कारण भीमकाय-सा है। डा० बाबूराम सक्सेना भाषा की दृष्टि से इसे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।[6]

जैन ने 'पद्मावत उर्दू' शीर्षक एक निबंध हल्काए-अदब, लाइब्रेरी इलाहाबाद के अगस्त १९४५ के अधिवेशन में पढ़ा था। उसमें भी उन्हों ने बहुत से अनुवादों की चर्चा की थी।

[1] इसके कई अनुवादों का उल्लेख इंडिया आफिस लाइब्रेरी तथा ब्रिटिश म्यूज़ियम के कैटलागों में है।

[2] यह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त और भी अनुवाद हुए हैं।

[3] कैटलाग्ज़ अव दि हिंदी, पंजाबी, सिंधी एंड पश्तो बुक्स इन दि लाइब्रेरी अव दि ब्रिटिश म्युज़ियम (१८९३) पृ० १०३

[4] वही

[5] शेरेफः पदुमावति (१९४४), रायल एशियाटिक सोसाइटी अव बंगाल द्वारा प्रकाशित। वास्तव में यह अनुवाद ग्रियर्सन महोदय ने प्रारंभ किया था। परंतु वे प्रथम १० खंडों का ही अनुवाद कर सके, शिरफ महोदय ने उसे पूरा किया है।

[6] बाबूराम सक्सेना : इवोल्युशन अव अवधी (१९३७) पृ० १२

रूप में वैज्ञानिक सम्पादन करने का प्रयत्न किया गया है।

३. पद्मावति—सन् १९३४ में ला० सूर्यकांत शास्त्री ने एक संस्करण पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर से प्रकाशित करवाया था। यह भी पूरा नहीं है और इस का पाठ एक [illegible] की प्रति पर और अन्य प्रतियों पर [illegible] पाठ को [illegible] है। इसके अंत में पद्मावत के शब्दों की एक [illegible] में अनुक्रमणिका एवं उनके अर्थ भी दिए हैं।

४. पद्मावत—सन् १९३५ ई० में ला० भगवानदीन ने हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से एक संस्करण प्रकाशित कराया था। यह केवल पद्मावत के [illegible] खंड तक है। इस में हस्तलिखित प्रतियों का कोई भी निर्देश नहीं किया गया।

५. पद्मावत—सन् १८८१ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से [illegible] पद्मावत का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। इस का पाठ [illegible] नहीं है।

६. पद्मावत—सन् १८८४ ई० में चंद्रप्रभा प्रेस, काशी से पद्मावत का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था जो नितांत साधारण है।

इन के अतिरिक्त कुछ और भी संस्करण[2] पद्मावत के प्रकाशित हुए हैं जो कि अत्यंत साधारण थे। इन में कुछ फारसी लिपि में भी हैं।

[1] देखिए : पद्मावती (१९३४) भूमिका पृष्ठ १९।

[2] सन् १८४१ ई० में अंग्रेजी फर्म [illegible] ने पद्मावत का एक संस्करण प्रकाशित किया था। प्रस्तुत लेखक उसे पा नहीं सका। यह देवनागरी लिपि में था। एक संस्करण कानपुर से फारसी लिपि में प्रकाशित हुआ था। [illegible] से लिखा है कि मुद्रित संस्करण उस के समय में थे। [illegible] का उल्लेख करते हुए वह लिखता है कि मेरठ के [illegible] अगस्त १८६६ के [illegible] में [illegible] का विज्ञापन है। देखिए गार्सां द तासी : इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी भाग २ (१८७०) पृ० ६९.

(२) जन्म खंड—

गंधर्वसेन और चंपावती के एक बालिका हुई। उस का नाम पद्मावती रक्खा गया। पद्मावती अत्यंत सुंदर थी। [illegible] वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर उस ने पढ़ना प्रारंभ किया। पढ़ने में वह बहुत चतुर थी। [illegible] [illegible] सखियों भी [illegible] पद्मावती [illegible] हीरामन था। वह [illegible] पढ़ा था और [illegible] था। [illegible] अपनी [illegible] था। [illegible] नहीं करता था। एक दिन [illegible] हीरामन ने पद्मावती से कहा—'पद्मावती सुनो, दिन-दिन तुम्हारा यौवन बढ़ता जाता है। पिता तेरा विवाह नहीं करते [illegible] कुछ नहीं कह सकती। [illegible] पिता उन की [illegible] दें।' हीरामन ने कहा—'यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो देश-देशांतर घूमकर मैं तुम्हारे योग्य वर खोजूँगा। जब तक मैं लौटकर नहीं आता, तब तक धैर्य धारण करो।' कोई दुर्जन इस बात को सुन रहा था। उस ने राजा से सारी बात कह दी। राजा ने सुए को मार डालने की आज्ञा दी। परंतु जब तक मारने वाले वहाँ तक आए कि, रानी ने उसे छिपा दिया और कह दिया—'तोता तो एक पक्षी है जो खाना भर जानता है। उसमें बुद्धि ही कहाँ होती है?' नौकर यह सुनकर लौट गए; परंतु हीरामन ने कहा—'रानी, यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो अब चला जाऊँ। जब राजा नाराज़ हो गए हैं तो यहाँ रहने में कुशल नहीं।' रानी ने कहा—'यदि जीव चला जाएगा तो काया किस प्रकार रह सकती है। तू पक्षी है, फिर भी मुझे अत्यंत प्यारा है। प्रेम का तोड़ना बड़ा कष्टदायक होता है।'

इन समस्त सम्पूर्ण पाठों में जायसी ग्रंथावली का पाठ ही सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। वैसे पद्मावती एक अच्छे संस्करण की अपेक्षा रखती है।

संक्षेप में इस की कथा इस प्रकार है—

(१) स्तुति खंड—

इस खंड में कवि ने संसार को बनाने वाले, उस के पैग़म्बर, पैग़म्बर के चार दोस्तों, शाहे-वक्त और अपने गुरु-परंपरा की प्रशंसा एवं स्तुति की है। साथ ही साथ कवि अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने चार मित्रों की प्रशंसा एवं काव्य लिखे जाने का समय देता है। इस के पश्चात् सम्पूर्ण कथा की अति संक्षिप्त रूप-रेखा उस ने दी है।

(२) सिंहलद्वीप वर्णन खंड—

इस खंड में कवि ने सिंहलद्वीप का परिचय दिया है। पहले तो वह सात द्वीपों में उस द्वीप की उच्चता बतलाता है। फिर सिंहल-नरेश गंधर्वसेन का परिचय देता हुआ सिंहलद्वीप की प्रकृति का वर्णन करता है। प्रकृति में पेड़, फल और पक्षी का वर्णन है। इस के पश्चात् कुआ, बावड़ी, मानसरोदक, पनिहारियों, ताल-तालाब, उपवन का वर्णन है। फिर कवि सिंहल नगर का परिचय देता है। सिंहल नगर में ऊँचे-ऊँचे मकान, बाजार, वेश्याओं, मालिन, पंडित, नट, चिड़ियों का खेल दिखाने वालों, नाटक करने वालों, ठग तथा चोरों का वर्णन है। उस के पश्चात् सिंहलगढ़ का परिचय लेखक ने दिया है। गढ़ में ऊँचाई, कोतवाल, पहरेदार, घड़ियाल, नदियाँ, पनिहारियाँ, कुंड, कंचन वृक्ष, गढ़पतियों, राज्यद्वार, हाथी, घोड़ों, राजसभा तथा राजमहल का वर्णन है। उसी वर्णन में उस ने चंपावती का परिचय भी दिया है कि वह गंधर्वसेन की पटरानी थी।

(२) जन्म खंड—

गंधर्वसेन और चंपावती के एक कन्या हुई। उस का नाम पद्मावती रखा गया। पद्मावती बड़ी ही सुंदर थी। बारह वर्ष की आयु प्राप्त करने पर उस ने अपना [illegible] किया। [illegible] थी। [illegible] हीरामन था। [illegible] था और [illegible] था। [illegible] पद्मावती के विवाह [illegible] था। [illegible] पद्मावती से हीरामन ने कहा—'[illegible] है। [illegible] नहीं [illegible] नहीं कह सकती। [illegible] परंतु [illegible] उन की [illegible] होगी।' हीरामन ने कहा—'यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो [illegible] मैं तुम्हारे [illegible] कर सकूँगा। जब तक मैं जीवित [illegible], तब तक ऐसे प्रयत्न करूँ।' कोई दुर्जन इस बात को सुन रहा था। उस ने राजा से सारी बात कह दी। राजा ने सुए को मार डालने की आज्ञा दी। परंतु जब तक मारने वाले वहाँ तक आए, रानी ने उसे छिपा लिया और कह दिया—'तोता तो एक पक्षी है जो केवल सुन जानता है। उसमें बुद्धि ही कहाँ होती है?' सैनिक यह सुनकर लौट गए; परंतु हीरामन ने कहा—'रानी, यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो अब वन जाऊँ। जब राजा नाराज़ हो गए हैं तो यहाँ रहने में कुशल नहीं।' रानी ने कहा—'यदि जीव चला जाएगा तो काया किस प्रकार रह सकती है। तू पक्षी है, फिर भी मुझे अत्यंत प्यारा है। प्रेम का तोड़ना बड़ा कष्टदायक होता है।'

(४) मानसरोदक खंड—

एक दिन पूर्णमासी के दिन पद्मावती सखियों के साथ मानसरोवर स्नान करने के लिए गई। वहाँ पर पद्मावती की एक सखी ने कहा—'रानी, मन में विचारकर तो देखो, इस नैहर में हमें दो चार दिन ही रहना है। जब तक पिता का राज्य है, तभी तक हम यहाँ खेल सकती हैं। फिर हम ससुराल चली जाएँगी, फिर कहाँ यह सरोवर मिलेगा और कहाँ हम सहेलियाँ? ससुराल में सास और ननदें बोलने तक नहीं देंगी। ऊपर से प्रिय का प्यार होगा। पता नहीं वहाँ कैसे जीवन बीतेगा।' यह कहकर सब सखियाँ झूला झूलने लगीं।

फिर रानी पद्मावती ने स्नान करने के लिए अपने बाल खोले और तीर पर कंचुकी एवं साड़ी उतारकर रख दी और पानी में जल-क्रीड़ाएं करने लगी। जल-क्रीड़ा में एक सखी जो कि खेलना नहीं जानती थी, अपना हार खो बैठी और रोने लगी। फिर पता नहीं कैसे अपने आप ही वह हार पानी पर उतराने लगा। उसे पाते ही सब सखियाँ प्रसन्न होकर हँसने लगी।

(५) सुआ खंड—

जब पद्मावती वहाँ खेल रही थी, हीरामन उड़ गया। वह जंगल में गया। वहाँ पर उसे बहुत से पक्षी मिले। उन्हों ने उस का बड़ा आ[illegible] दिया। वह वहाँ बड़े सुख से रहने लगा।

[illegible] दिन वहाँ एक [illegible] । हीरामन उस के जाल में फँस [illegible] ने उसे [illegible] लिया और ले गया।

उस के जन्म लेते ही बतलाया कि यह बड़ा सौभाग्यवान है। यह पद्मावती से विवाह करेगा और सिंहलद्वीप में जाकर सिद्ध बनेगा।

(७) बनिजारा खंड

चित्तौड़ का एक बनिया सिंहलदीप व्यापार करने के लिए गया। एक गरीब ब्राह्मण भी किसी से ऋण लेकर उस बनिए के साथ गया। सिंहलदीप में जाकर उस ब्राह्मण ने देखा कि वहाँ बहुत बड़ा बाजार लगा हुआ है और सभी चीजें ऊँचे दामों की हैं। इस कारण वह बड़ा निराश हो उठा। इतने में वह व्याधा हीरामन को ले आया। ब्राह्मण उस के सोने जैसे रंग को देखकर विमोहित हो उठा। उस ने तोते से पूछा—'तुझ में कुछ गुन भी है या तू निरगुन ही है।' हीरामन ने उत्तर दिया—'मैं ब्राह्मण और पंडित दोनों हूँ। जब इस पिंजड़े के बाहर था तो मेरे पास सभी गुन थे; परंतु जब बंदी बना हुआ हूँ, तब तो कोई भी गुन नहीं है।' ब्राह्मण ने उसे खरीद लिया और चित्तौड़ ले आया।

चित्तौड़ के राजा चित्रसेन की मृत्यु हो चुकी थी और रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। उस के दरबार में एक दिन यह बात चली कि सिंहल से कुछ बनिए आए हैं वे विचित्र-विचित्र वस्तुएँ लाए हैं, जिन में एक ब्राह्मण एक अत्यंत सुंदर तोता लाया है। राजा ने अपने नौकरों को भेजकर पंडित को बुलवाया और तोते के विषय में पूछा। हीरामन ने कहा, 'मेरा नाम हीरामन है, मैं तुम्हारी भेंट पद्मावती से करवा दूँगा और वहीं पर तुम्हारी सेवा करूँगा।' रत्नसेन ने यह सुनकर उसे मोल ले लिया।

(८) नागमती सुआ संवाद—

थोड़े दिन बीतने पर एक दिन राजा शिकार खेलने गया हुआ था, नागमती जो कि रत्नसेन की पटरानी थी, ने हीरामन से पूछा, 'मेरे स्वामी के प्रिय, यह बतलाओ कि क्या मुझ से भी अधिक सुंदर कोई स्त्री तुम ने

नागमती और सारा रनिवास रो रहा था। नागमती ने कहा, 'या तो यहां रहकर हमें भोगिनी बनाओ या हमें भी अपने साथ योगिनी बनाकर ले चलो। पद्मिनी भले ही अत्यंत सुंदर हो परंतु मुझ से अधिक सुंदर कोई भी नहीं हो सकता।' रत्नसेन ने उत्तर दिया, 'तुम स्त्री हो, इस कारण मति-हीन हो। संसार तो सपने के समान है। इस में बिछुड़ जाने पर ऐसा हो जाता है जैसे कभी एक दूसरे को देखा भी न हो।' इस प्रकार सब से विदा होकर राजा सोलह सौ कुंवरों के साथ सिंहलदीप की ओर चल पड़ा। उस के आगे आगे हीरामन पथ दिखलाता हुआ चल रहा था।

(१३) राजा गजपति सवाद खंड—

लगभग एक माह चलने के पश्चात ये व्यक्ति समुद्र के घाट पर पहुँचे वहां पर राजा गजपति मिला। उस ने जब यह सुना था कि राजा रत्नसेन योगी होकर इस ओर आ रहा है तो वह उस से मिलने वहां पर आ गया था। उस ने कहा, 'आप ने दर्शन दे कर बड़ी कृपा की। अब आज्ञा दीजिए।' राजा ने कहा, 'तुम्हारी बड़ी कृपा होगी यदि तुम मुझे जहाज़ों का इंतजाम कर दो।' गजपति ने कहा, 'आप की आज्ञा सिर माथे पर। जहाज़ों का इंतजाम तो कर दूंगा परंतु प्रार्थना यह है कि पंथ बड़ा ही भयंकर है, आप वहां कैसे जाएंगे?' राजा ने उत्तर दिया, 'गजपति, जहां प्रेम होता है, वहां प्राणों की परवाह नहीं रहती। इस कारण मैं चला ही जाऊँगा।'

(१४) बोहित खंड—

राजा वहां से चल पड़ा। जब वे जहाज चले तो सारा समुद्र उन से पट गया। वे एक पल में सहस कोस की रफ्तार से जा रहे थे।

(१५) सात समुद्र खंड—

रस्ते में खार समुद्र में आए। उस में बड़ी बड़ी लहरें उठ रही थीं। फिर खीर समुद्र में पहुँचे। वहां पर समुद्र में हीरा-मोती भरे हुए

थे। उस के पश्चात दधि समुद्र में आए जोकि दही की भांति जमा हुआ था। दधि समुद्र पार कर लेने पर उदधि समुद्र मिला। इस में आग जल रही थी। फिर सुरा समुद्र में आए। जो कोई उस का जल पी लेता वह बेहोश हो जाता। सुरा समुद्र के पश्चात किलकिला समुद्र मिला। इस की ऊँची ऊंची लहरें देखकर ही साहस छूट जाता था। हीरामन ने राजा से कहा, 'यही वह समुद्र है जो कि सिंहलदीप जाते समय पार करना कठिन है। इसे पार करना तलवार की धार पर चलना है।' राजा ने दृढ़ता से उत्तर दिया, 'मैं ने तो प्रेम समुद्र में अपना जहाज डाल दिया है। यह समुद्र तो उस की एक बूंद के समान ही है।' फिर मानसर समुद्र में आए। यह अत्यंत शांत था।

(१६) सिंहल द्वीप खंड—

सिंहल द्वीप पहुँचने पर तोते ने राजा को सिंहल गढ़ दिखलाते हुए बतलाया, 'यह जो ऊँचा गढ है, यहीं पर पद्मावती रहती है। उस के पास न तो भौंरा ही जा सकता है और न कोई पक्षी। अब मैं पहले तो तुम्हें उस के दर्शन करवाऊंगा और फिर प्राप्ति।' यह कहकर उस ने उसे कंचन का सुमेरु पर्वत दिखलाते हुए कहा, 'यह जो पर्वत है वहां पर महादेव का मंडप है। माघ मास की श्री पंचमी को वहां पर महादेव की पूजा करने के लिए सब लोग आते हैं। पद्मावती भी पूजा करने के लिए आएगी। इसी मिस तुम वहां पर उस के दर्शन पा सकोगे।' राजा ने वहां रहना स्वीकार किया और हीरामन रानी पद्मावती के पास चला गया।

(१७) मंडप गमन खंड—

वियोग में पागल राजा तीस हजार चेलों के साथ महादेव के मंडप में रहने लगा और पद्मावती की प्राप्ति के लिए उन से प्रार्थना करने लगा।

(१८) पद्मावती वियोग खंड–

राजा के योग के अलक्षित प्रभाव से पद्मावती में विरह उत्पन्न हुआ। उस से रात काटे नहीं कटती थी। पद्मावती ने धाय से कहा, 'अब तो यौवन असह हो रहा है। यदि सिंह मुझे मारकर खा जाता तो भी भला रहता। मैं ने तो सुना था कि यौवन बसंत के समान सुखदायी होता है परंतु अब पता चला कि यह बड़ी दुखदायी वस्तु है।' धाय ने धीरज बंधाते हुए उत्तर दिया, 'तुम सयानी हो। तुम्हें धैर्य धारण करना चाहिए। यौवन रूपी घोड़े को हाथ में रखना चाहिए। इसे यहां वहां नहीं जाने देना चाहिए। तुम अभी प्रेम नहीं जानतीं। जब तक प्रिय नहीं मिलता, उस समय तक प्रेम की पीड़ा बड़ी अच्छी होती है।' पद्मावती ने उत्तर दिया, 'धाय, मेरा जी तो जल सा रहा है। यौवन के चांद के उदित होते ही उसे राहु रूपी विरह ने ग्रस लिया है।'

(१९) पद्मावती सुआ भेंट खंड–

इसी वियोग व्यथा के बीच हीरामन पहुँच गया। पद्मावती को ऐसा लगा मानो उस में प्राण आ गए हों। रानी उसे गले से लगाकर रोई और उस से कुशल पूछी। हीरामन बोला, 'रानी, तुम युग-युगों तक जीती रहो। मैं यहां से वन में उड़कर गया। वहां पर एक व्याध ने मुझे पकड़ लिया और एक ब्राह्मण के हाथों में बेच दिया। ब्राह्मण मुझे जंबूद्वीप ले गया। वहां चित्रसेन का पुत्र रत्नसेन चित्तौड़ में राज्य कर रहा था। वह देश बड़ा ही वैभववान एवं सुंदर है। रत्नसेन में बत्तीसों शुभ लक्षण हैं। उस ने मुझे ले लिया। उसे देखकर मेरी इच्छा हुई कि वह तुम्हारे योग्य है, इस कारण तुम्हारा वर्णन मैं ने उस से किया। तुम्हारा वर्णन सुनते ही उस के अंदर प्रेम की चिनगी पड़ गई। वह तुम्हारे लिए राज्य छोड़कर भिखारी हो गया। वह सोलह हजार चेलों के साथ योगी बन कर यहां आया है। वह महादेव

की मढ़ी में है ।' यह सुनकर पद्मावती के मन में अभिमान हुआ। जोगी से प्रेम करने को वह अपमान समझती थी। हीरामन फिर बोला, 'रानी, तुम्हारे विरह में उस ने अपनी कंचन जैसी काया जला कर भस्म कर दी है।' यह सुनकर रानी के मन में दया उत्पन्न हुई और काम भी जागा। वह बोली, 'यदि वह योगी अब मर जाएगा तो यह हत्या अब मुझे ही लगेगी। अब मैं वसंत पूजा के बहाने वहां जाकर उस से मिलूंगी।' यह सुनकर हीरामन प्रसन्न वदन वहां से उड़ कर रत्नसेन के पास गया और पद्मावती का संदेश उस ने उसे सुना दिया।

(२०) वसंत खंड—

वसंत की श्री पंचमी को पद्मावती महादेव की पूजा के लिए सखियों के साथ वहां गई। पद्मावती ने महादेव की पूजा करते हुए कहा, 'देवता, मेरी सारी सखियों का विवाह हो गया है, परंतु अभी तक मेरे लिए वर ही नहीं मिलता। मेरी इच्छा पूरी करो और मेरे लिए एक वर मिला दो।' इसी समय एक सखी हँसकर बोली, 'रानी यह तमाशा तो देखो। पूर्व द्वार पर बहुत से योगी आए हुए हैं। उन में एक गुरु कहलाता है वह बत्तीस लक्षण युक्त राजकुमार प्रतीत होता है।' यह सुनकर पद्मावती वहां गई। उस को देखते ही राजा बेहोश हो गया। पद्मावती ने उसके शरीर पर चंदन लगाया। एक क्षण के लिए तो राजा जागा अवश्य परंतु शीघ्र ही ठंडक पाकर और गहरी नींद में सो गया। तब रानी पद्मावती ने उस के हृदय पर चंदन से यह लिखा कि जोगी, तू भीख लेना नहीं सीखा है। जब घड़ी आई तब तू सो गया। यह लिखकर पद्मावती लौट गई। रात में उस ने स्वप्न में देखा कि चंद्रमा का उदय पूर्व से हुआ है और सूर्य का पश्चिम से। फिर सूर्य चांद के पास चला आया और चांद और सूर्य दोनों का मिलन हो गया है। और हनुमान ने लंका लूट ली। सखियों

से जागने पर उस ने सपने का अर्थ पूछा। सखियों ने कहा कि तुम्हें वर प्राप्त होने वाला है।

(२१) राजा रत्नसेन सती खंड–

पद्मावती के चले जाने पर रत्नसेन जागा। वह पद्मावती को गया हुआ देखकर रोने लगा और जल मरने का निश्चय करने लगा।

(२२) पार्वती महेश खंड–

उसी समय वहां पर महादेव एवं पार्वती पहुँच गए। उन्हों ने चिता देखकर रत्नसेन से आत्महत्या और योग नष्ट करने का कारण पूछा। राजा ने संक्षेप में अपनी व्यथा बतलाई। पार्वती के हृदय में उसे सुनकर दया आ गई। वह अप्सरा के समान सुंदर रूप धारण कर बोली, 'राजकुमार, मेरी बात सुनो। मुझ जैसी सुंदरी और कोई नहीं है। इंद्र ने मुझे तुम्हारे पास भेज दिया है। यदि पद्मावती गई तो जाने दो। तुम्हें अप्सरा मिल गई।' रत्नसेन ने इन्कार करते हुए कहा—'मेरा प्रेम तो एक से है, दूसरे से मुझे कुछ भी मतलब नहीं है।' तब गौरी ने महेश से कहा, 'इस का प्रेम बड़ा गहरा है। तुम इस की रक्षा करो।' इतने में रत्नसेन को महादेव का वास्तविक रूप ज्ञात हो गया। वह रोने लगा। उस को ढाढ़स बँधाते हुए महादेव ने कहा, 'रोओ मत। जैसा तुम्हारा शरीर नौ पौरों का है उसी प्रकार यह गढ़ भी है। दसवें द्वार तक इस में भी चढ़ना पड़ेगा। जो दृष्टि को उलट कर लगाता है, वही उसे देख पाता है और वहाँ वही जा भी सकता है।'

(२३) राजा गढ़ छेंका खंड—

इस सिद्धि गुटका को पाकर राजा एकाएक महल में घुस पड़ा। गंधर्वसेन को खबर मिली। उसने अपने नौकर भेजे। नौकरों से रत्नसेन

ने कहा कि राजा की कन्या पद्मावती का भिखारी मैं हूँ। यदि वह मुझे दे दी जाए तो मैं लौट जाऊँगा। नौकरों ने यह बात राजा गंधर्वसेन से कही। गंधर्वसेन को यह सुनकर बड़ा क्रोध हुआ।

रत्नसेन उत्तर की प्रतीक्षा में दिन बिताने लगा। उस ने एक पत्र हीरामन के हाथ पद्मावती के पास भेजा। पद्मावती ने उत्तर के रूप में अपने प्रेम की दृढ़ता का संदेश भेजा। पद्मावती का संदेश सुनकर रत्नसेन प्रसन्न-सा हो उठा।

(२४) गंधर्वसेन मंत्री खंड—

गंधर्वसेन ने अपने मंत्रियों की सलाह ली। सब ने रत्नसेन को बंदी बनाने की सलाह दी। वह बंदी बना लिया गया। इधर पद्मावती बड़ी दुखी थी। वह एक बार बेहोश हो गई। हीरामन सुआ वहाँ पर लाया गया। उस की आवाज सुनकर उसे होश आया। और पद्मावती ने एक संदेश रत्नसेन के लिये भेजा।

(२५) रत्नसेन सूली खंड—

रत्नसेन बंदी बनाकर गंधर्वसेन के पास लाया गया। वहाँ पर गंधर्वसेन के पूछने पर उस ने अपनी व्यथा सच-सच बतला दी। इसे सुनकर महादेव का आसन भी डोल उठा। महादेव और पार्वती भाट-भाटिन का रूप धरकर वहाँ आए। रत्नसेन आसन जमाए 'पद्मावती-पद्मावती' जप रहा था। इतने में सुए ने आकर पद्मावती का संदेश सुनाया। महादेव भी आगे बढ़े। उन्होंने राजा को समझाया और रत्नसेन का सच्चा परिचय दिया। हीरामन ने भी साक्षी दी। तब विवाह का निश्चय कर रत्नसेन का तिलक किया गया।

(२६) रत्नसेन सूली खण्ड—

लग्न रखी गई और विवाह की तैयारी हुई। रत्नसेन के लिए सुंदर वस्त्र लाए गए और बारात सजकर चली। पद्मावती महल के

ऊपर से खड़ी होकर बारात देख रही थी। एकाएक प्रसन्नता की ऐसी लहर उस के शरीर में आई कि वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। सखियों ने उसे संभाला और होश में लाईं। बारातियों को दावत दी गई और फिर विवाह हुआ। महल में सात खण्डों के ऊपर रत्नसेन को सुहागरात के लिए ले जाया गया।

(२७) पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड—

वहाँ पर सखियाँ पद्मावती की गाँठ खोलकर रत्नसेन से उसे अलग ले गईं। संध्या को एक सखी रत्नसेन के पास आई और उस के योग का मजाक उड़ाने लगीं। राजा ने परिहास का उत्तर परिहास में न देकर अत्यंत गंभीरता पूर्वक दिया। इसी गंभीर वातावरण के बीच पद्मावती लाई गई। पद्मावती आने में तो बड़ा संकोच कर रही थी। परंतु आते ही उस का सारा संकोच दूर हो गया। उस ने पहले तो राजा की उपेक्षा-सी की परंतु बाद में दोनों ने सुख से केलि-क्रीड़ा करते हुए रात बिताई।

(२८) रत्नसेन साथी खंड—

सवेरे रत्नसेन अपने साथियों के पास गया। उन्हें उस ने सोलह हजार पद्मिनी स्त्रियां दिलाईं। वे भी सुख से वहां रहने लगे।

(२९) षट ऋतु वर्णन खंड—

पद्मावती ने छहों ऋतुएं बड़े सुख से रत्नसेन के साथ बिताईं।

(३०) नागमती वियोग खंड—

नागमती के दिन रत्नसेन के विरह में बड़े दुख में बीत रहे थे। वह निरंतर चित्तौड़ का पथ निहार रही थी परंतु रत्नसेन न लौटा। वह एक सामान्य स्त्री की भांति रहती थी। उस के गले में हार तक नहीं था। वह निरंतर रोती रहती थी। रोते रोते उस ने बारह महीने बिता दिए। वह जिस पंछी के निकट जिस वृक्ष के नीचे जाकर अपने

विरह की कथा करती थी, वह पंछी जल जाता था और वह वृक्ष बिना पत्तों का हो जाता था।

(३१) नागमती संदेश खंड—

नागमती रोती फिर रही थी। एक दिन आधी रात के समय एक पंछी को उस पर दया आ गई। उस ने उस की कथा पूछी। नागमती ने अपने विरह की कहानी उसे सुनाते हुए उस ने रत्नसेन के पास तक उस का संदेश ले जाने की प्रार्थना की। पंछी ने उसे स्वीकार कर लिया। नागमती ने कहा, 'पद्मावती से कहना कि मैं भी उसी पुरुष के साथ ब्याही हूँ और मेरा जी भी अपने जी के समान ही वह समझे। मुझे भोग से कोई काम नहीं, परंतु मैं उस की स्नेह दृष्टि मात्र चाहती हूँ। सपत्नी जिस के हाथ में मेरा प्रियतम है, मेरी वैरिन नहीं हो सकती। यदि तुम मुझे एक बार मेरे प्रिय से मिला दो तो मैं अपना सिर तुम्हारे पैरों पर रख दूंगी। रत्नसेन से कहना कि मां बड़ी दुखी थीं। तुम ही उनके लिए एक मात्र श्रवणकुमार थे। वह निरंतर तुम्हारी रट लगाए-लगाए मर गईं।'

पंछी इस संदेश को लेकर चला। सिंहल में बड़ी आग उठी। सब जगह आग लगी हुई देखकर सारे पंछी तीर के एक वृक्ष पर आकर बैठ गए। उसी पेड़ के नीचे रत्नसेन जो कि वहाँ शिकार खेलने आया था, बैठ गया। यह पंछी भी उसी पेड़ पर जाकर बैठा। उन पंछियों में आपस में बातें होने लगीं। इस पंछी ने अपना परिचय दिया और नागमती की कथा पंछियों को सुनाई। राजा नीचे बैठा सब कुछ सुन रहा था। उस ने पंछी से फिर सारी बात पूछी। और कहा, 'पंछी, मेरी आँख सदा नागमती की राह पर ही लगी रहती है, परंतु कोई भी आकर उसका संदेश नहीं सुनाता।' पंछी ने नागमती की विरह कथा फिर कह सुनाई और वह उड़कर चला गया। रत्नसेन उसे पुकारता रह गया परंतु वह न लौटा। रत्नसेन को अब चित्तौड़

की याद आ गई। वह एक बरस तक चितौड़ को भूला हुआ था। वह उदास रहने लगा। गंधर्वसेन उसे उदास देखकर उस के पास आया और बोला, 'तुम मेरे प्राणों के समान हो, तुम्हें मैं ने अपनी आखों में रहने को जगह दी। यदि तुम्हीं उदास हो जाओगे तो यह महल किस का होकर रहेगा?'

(३२) रत्नसेन विदाई खंड—

रत्नसेन ने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए कहा, 'मैं कांच था, आप ने ही मुझे कंचन बना दिया है। परंतु आज मेरा परेवा पत्र ले कर आया है। मेरा राज्य मेरा भाई लिए ले रहा है। उधर दिल्ली सुल्तान भी हमला करने वाला है। इस कारण मुझे विदा दी जाए।' गंधर्वसेन ने रत्नसेन की बात मान ली। सुमुहूर्त में वहाँ से अगणित द्रव्य लेकर रत्नसेन पद्मावती के साथ चला।

(३३) देश यात्रा खंड—

समुद्र में जब कि आधा रास्ता भी तय नहीं हो पाया थे, एक बड़ी जोर की आंधी उठी। इस में राजा के जहाज़ अपना रास्ता भूल गए। विभीषण का एक केवट राक्षस मछलियों का शिकार करते-करते वहां आ गया था। राजा ने आफ़त में पड़कर उस से अपना जहाज़ ठीक रास्ते पर लगा देने की प्रार्थना की। राक्षस ने कपट रूप से उसे विनय-पूर्वक स्वीकार किया और उसे एक अत्यंत गहरे और भँवरों से भरे सागर में ले गया। वहाँ राजा का जहाज़ टू[illegible]

(३४) लक्ष्मी समुद्र खंड—

बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी। वहाँ [illegible]
[illegible] जिस का नाम लक्ष्मी था, खेल रही थी। उस ने [illegible]
और उसे होश में लाई। होश में आने पर पद्मा[illegible]
कहाँ है और रत्नसेन कहाँ है? लक्ष्मी ने कहा, '[illegible]

जानती। मैं ने तुम्हें तो किनारे पर ही पाया है।' पद्मावती यह सुनकर सती होने के प्रयत्न करने लगी। लक्ष्मी ने उसे समझाया और रत्नसेन के ढूँढ़ने का आश्वासन दिया। उस ने अपने पिता से सब बात कही। पिता ने पुत्री को आश्वासन दिया। आश्वासन पाकर लक्ष्मी समुद्र तट पर जाकर बैठ गई। वहाँ पर रत्नसेन आया। उस ने अपने को पद्मावती बतलाया। परंतु रत्नसेन ने उसे पहिचान लिया, वह पद्मावती न थी। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती के पास ले गई। बिछुड़े हुए प्रेमी मिल गए। वहाँ से वे जगन्नाथ होते हुए अपने देश की ओर बढ़े।

(३५) चित्तौड़ आगमन खंड—

जब राजा चित्तौड़ के निकट पहुँच गया तो नागमती को बड़ी हुई। परंतु पद्मावती को देखकर उस में सपत्नी की ईर्षा जाग उठी। उस ने उसे दूसरे महल में उतारा। दिन भर राजा दान-पुण्य करता रहा। रात में वह नागमती से मिला। नागमती का जीवन फिर हरा भरा हो उठा।

(३६) नागमती पद्मावती विवाद खंड—

नागमती को प्रसन्न देखकर पद्मावती के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह एक दिन नागमती से लड़ गई। दोनों में हाथापाई होने लगी। जब रत्नसेन ने यह सुना तो वह वहाँ पहुँचा। उस ने समझाया—'तुम दोनों का प्रिय मैं हूँ। जिस प्रकार रात दिन दोनों आवश्यक हैं उसी प्रकार तुम मेरे लिए हो।' दोनों रानियाँ यह सुनकर सन्तुष्ट हो गईं।

(३७) रत्नसेन संतति खंड—

नागमती के नागसेन और पद्मावती को पद्मसेन नाम के पुत्र हुए। ज्योतिषियों ने बतलाया कि दोनों बड़े भाग्यवान हैं।

भूकंप आया था और एक बहुत बड़ा सूर्य-ग्रहण पड़ा था। फिर कवि ने मुहम्मद की स्तुति की है और बाबर की शाहे वक्त के रूप में प्रशंसा की है। गुरु के स्थान पर उस ने सैयद अशरफ जहाँगीर की वंदना की है और जायस नगर का परिचय दिया है। सन् ६३६ हिजरी को काव्य के रचना-काल के रूप में देते हुए उस ने प्रलय का दृश्य दिया है।

पहले मेकाइल को आज्ञा मिली। फल स्वरूप पहले अंगार बरसे और सारा संसार उन से जल गया। फिर पत्थर बरसे। इस से सारे वृक्ष आदि टूट गए। यह क्रम चालीस दिनों तक चलता रहा। संसार के सारे जीव-जन्तु इस में मर गए।

फिर जिबरइल को आज्ञा दी गई। उन्हों ने सारे जीवों को झकझोरकर और कुचलकर मार डाला। मृतकों के सड़ने से संसार में बड़ी दुर्गन्ध आने लगी। उन्हों ने जाकर दैव से विनती की कि देव, चलकर देख लीजिए, संसार में कोई भी जीता नहीं बचा है, मुर्दों के बिछ जाने के कारण जमीन की मिट्टी तक नहीं दिखलाई पड़ती।

फिर मेकाइल नामक फरिश्ते को आज्ञा दी गई कि वह पानी बरसावे। चालीस दिन तक लगातार झड़ी लगी रही। सारी दुनिया उस में डूब गई।

इस के पश्चात् इसराफील को आज्ञा दी गई। उन्हों ने बाजे की आवाज से सारे संसार को उड़ा दिया। उन की तुरही की आवाज़ सुनकर सारी पृथ्वी एवं आकाश काँप उठा। चौदहों भुवन इस प्रकार हिलने लगे मानो झूले में झुलाए जा रहे हों। उन की पहली फूँक से नदी-नाले समतल हो गए। दूसरी से पहाड़ उड़कर समुद्र में गिर पड़े और चाँद, तारे, सूरज सभी टूटकर गिर पड़े। तीसरी में सारी धरती समतल हो गई।

फिर अज़राइल को आज्ञा मिली कि वे सारे जीवों को ले आवें। मारने वाले फरिश्ते ने पहले तो जिबरइल को मारा फिर मेकाइल को

और फिर इसराफील को। इस समय अन्य सारे जीव सो रहे थे। तब खुदा ने उस से पूछा, अब तो कोई नहीं बचा! उस ने उत्तर दिया कि अब मेरे और आप के सिवाय कोई भी नहीं बचा है। इस पर खुदा ने अज़राइल के भी प्राण ले लिए।

चालीस वर्षों के पश्चात् खुदा ने सोचा, मैं ने तो सारा संसार बनाया है, परंतु मेरा नाम कोई नहीं लेता है। जितने पड़े हुए हैं उन सब को मैं उठाऊँगा और सरात के पुल पर से चलाऊँगा। फिर सब के कर्मों का फल दूँगा।

पहले चार फरिश्ते—जिबरइल, मैकाइल, इसराफील और अज़राइल जीवित किए गए। जिबराइल पृथ्वी पर आए। उन्हों ने पहले मुहम्मद को पुकारा। लाखों स्वरों ने उनका उत्तर दिया। वे बहुत घबड़ाए और खुदा के पास जाकर बोले, हे गुसाईं मैं उन्हें कहाँ पाऊँ। मैं पृथ्वी पर जहाँ भी उन का नाम ले कर बुलाता हूँ लाखों आवाज़ें जवाब में सुनाई पड़ती हैं। मैं किसे ले आऊँ?

जिबरइल सूँघकर चीज़ों को पहिचान लेते थे। उन्हें भेजा गया। उन्हों ने मुहम्मद को ढूँढ़ लिया और रसूल अपने अनुयायियों के समेत उठ खड़े हुए। सब नंगे थे और तालू में सब की आँखें थीं। कोई किसी की तरफ नहीं देखता था। सब की दृष्टि स्वर्ग की तरफ थी। सब सरात के तीस हजार कोस लम्बे लेकिन सँकरे पुल पर चले। उन के एक ओर तो मुहम्मद थे और दूसरी ओर जिबरइल। जो धर्मी थे वे तो विद्युत गति से चले और दूसरे अपने कर्मों के अनुसार तेज-धीमे। इन में बहुत पापी तो पीब के समुद्र में जो कि पुल के नीचे एक ओर है, गिर पड़े।

फिर सूर्य को चमकने की आज्ञा दी गई और सब का लेखा-जोखा होने लगा। खुदा ने जिस को जितना दुनियावी ज़िन्दगी में दिया था, वह उसी हिसाब से उस से लेना चाहता था। सूर्य बराबर छः महीनों तक चमकता रहा और बराबर दिन रहा। कुछ तो उस के ताप से जल

रहे थे और कुछ प्यास से व्याकुल हो रहे थे। परंतु जो धर्मी थे उन के सिर पर छाँह थी।

सवा लाख पैगम्बर भी वहीं पर थे। किंतु एक रसूल ही ऐसे थे जो कि छाँह में नहीं बैठे थे। भला जिस के अनुयायी दुख एवं कष्ट में हों वह सुख से कैसे बैठ सकता था। मुहम्मद साहब को आज्ञा दी गई कि वे अपने अनुयायियों को ले आवें। उन्हों ने कहा, 'यदि आज्ञा हो तो धर्मी जनों को पहले ले आऊँ।' खुदा ने कहा, 'नहीं, उन्हें मैं नहीं चाहता। मैं तो पापियों को सजा देना चाहता हूँ।' तब रसूल आदम के पास गए और बोले, 'पिता मुझे तुम्हारी बड़ी आशा है। मेरे अनुयायी कष्ट में हैं। तुम सब से बड़े हो, तुम खुदा से इन्हें क्षमा कर देने के लिए कहो।' आदम ने कहा, 'मैं तो स्वयं दुख में हूँ। मैं गेहूँ खाकर आफत में पड़ गया।' तब रसूल मूसा के पास गए और बोले, 'हे भाई, तुम खुदा के अधिक निकट हो। मेरे अनुयायी आफत में पड़ गए हैं, उन्हें बचाओ।' मूसा ने उत्तर दिया, 'रसूल, सुनो। मैं तो फ़रऊँ बादशाह से झगड़ा कर आफ़त में फँस गया हूँ।' इस के पश्चात् रसूल दौड़-दौड़कर बहुत से लोगों के पास गए परंतु किसी ने उन की बात नहीं सुनी। ईसा, इब्राहीम, नूह सभी ने जवाब दे दिया।

तब रसूल ने खुदा से ही विनती की। खुदा ने गुस्से में भरकर कहा, 'बीबी फातिमा को ढूँढ़ो। उन्हों ने मुझ से क्या झगड़ा किया था, और हसन-हुसैन को किस ने मारा था?' तब बीबी फातिमा ढूँढ़ी गईं। परंतु कहीं पर भी वे न मिलीं। लौटकर खुदा को यह सूचना दी गई। खुदा ने अपनी आज्ञा से उन को बुलाते हुए कहा, 'जो कोई इन की ओर आँख खोलकर देखेगा मैं उसे छार कर दूँगा।'

सब हाथों से आँखें ढँककर बैठ गए। बीबी फातिमा उठीं और हसन-हुसैन को लेकर खुदा के पास गईं। उन्हों ने कहा, 'तुम सही गलत सब जानते हो। इन को यज़ीद ने क्यों मारा था? पहले मेरा न्याय किया जाए फिर संसार का न्याय होता रहेगा। नहीं तो मैं शाप

दूँगी और सारा आसमान जल जायगा।' खुदा ने रसूल को आज्ञा दी कि वे फातिमा को समझाएँ नहीं तो उन के सारे अनुयायियों पर आफ़त आ जायगी।

रसूल ने बीबी को समझाया। बीबी ने कहा, 'सारे पैग़म्बर तो छाया में बैठे हैं, तुम्हीं एक ऐसे क्यों धूप में खड़े रहे हो।' रसूल ने उत्तर दिया, 'मेरे अनुयायी तो संकट में पड़े हैं, तब मैं क्या छाँह में बैठूँ।' बीबी फातिमा को अपने पिता पर दया आ गई। तब रसूल खुदा के पास गए। खुदा ने फातिमा बीबी का इंसाफ़ किया और यज़ीद को नरक में डाल दिया।

तब रसूल के अनुयायी बुलाए गए। रसूल ने सब को क्षमा करवा दिया। सब को खुदा ने दावत दी। उस दावत में कोई भी अपने हाथ से नहीं खाता था परंतु जो कुछ भी उस की इच्छा होती थी वह स्वयं ही उन के मुँह में चला जाता था। खाने में दाँत, जीभ, मुँह कुछ भी नहीं चलाना पड़ता था। खाने के पश्चात् सब को स्वर्ग की शराब पिलाई गई। फिर पान खिलाए गए।

मुहम्मद ने खुदा से प्रार्थना की कि आप के दर्शन किए बिना मैं स्वर्ग न जाऊँगा। तब खुदा ने मुहम्मद तथा उन के अनुयायियों को एक प्रकाश के रूप में दर्शन दिए। उसे देखकर दो दिन तक सब लोग बेसुध रहे। तीसरे दिन जिबरईल ने उन सब को जगाया और वे सब को सुवस्त्र पहिनाकर बहिश्त ले गए। वहाँ पर उन को बहुत सी हूरें और परियाँ मिलीं।

वहाँ पर न मृत्यु थी, न नींद; न दुख था और न शरीर की कोई व्याधि। सब लोग वहाँ पर भोग-विलास में रत हो गए।

संक्षेप में जायसी से प्राप्त ग्रंथों की यही रूप-रेखा है।

३—अध्ययन

§ १—मलिक मुहम्मद जायसी यद्यपि हिंदी साहित्य में अध्ययन के विशेष केन्द्र नहीं रहे परंतु फिर भी जहाँ तहाँ उन के विषय में विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। संक्षेप में उन विचारों की रूप-रेखा नीचे दी जाती है।

§ २—श्री गार्सां द तासी ने अपने ग्रंथ इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई एं ऐंदुस्तानी, भाग दो में जायसी के विषय में एक छोटी से टिप्पणी लिखी है।

इस में तासी ने बतलाया है कि जायसी को लोग जायसी दास भी कहते थे। इस में शायद इस बात की ओर संकेत है कि ये हिन्दी मज़हब से इस्लाम में दीक्षित हुए थे। जायसी ने चार पुस्तकें लिखी—पद्मावती, धनावत, सोरठ और परमार्थ जपजी। इन में पहली तो प्रकाशित है और दूसरी की पोथी डाक्टर स्प्रेंगर के पास है। तीसरे और चौथे ग्रंथ की पोथियाँ बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी में हैं।

जायसी शेरशाह के वक्त में हुए थे।

§ ३—श्री ग्रियर्सन महोदय ने सन् १८८९ ई० में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' में जायसी के विषय में लिखा है।

मलिक मुहम्मद जायसी शेरशाह के समय १५४० ई० में थे। इन्हों ने 'पद्मावत' लिखा जो हिन्दी साहित्य में सब से अधिक अध्ययन के योग्य ग्रंथ है। इस की मौलिकता तथा इस की काव्यात्मकता दोनों ही महत्व पूर्ण हैं।

मलिक मुहम्मद एक पहुँचे हुए संत थे। अमेठी के राजा उन को

मक़बूल मानते थे। उन्हों ने १५४० ई० में पद्मावत लिखा। उन की कहानी ऐतिहासिक आधार को लेकर लिखी गई है। कहानी का कुछ भाग उन्हों ने उदयन की पद्मावती तथा रत्नावली से भी लिया है।

§४—मिश्रबंधु जी ने अपने मिश्रबंधु-विनोद में मलिक मुहम्मद जायसी के विषय में कुछ बातें लिखी हैं।

इन के विचार से पद्मावती की रचना ९२७ हि० से शुरू हो गई थी परंतु बाद में शेरशाह के ज़माने में पूरी हुई। जायसी ने पद्मावती की रचना जायस में की। मलिक इन की उपाधि थी। सिवा दो-एक छोटी-छोटी बातों के पद्मावती की अन्य सभी घटनाएँ इतिहास से मिलती हैं। उन की कविता से तत्कालीन रहन-सहन का अच्छा पता चलता है। इन की कविता में उद्दंडता का अभाव नहीं है। अखरावट पद्मावत से पीछे बना होगा इन्हों ने किसी हिन्दू देवी-देवता का नाम पद्मावती के स्तुति खंड में नहीं लिया, हाँ, कभी हिन्दू धर्म पर घृणा नहीं दिखलाई।

§५—महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने उदयपुर राज्य का इतिहास की पहली जिल्द में मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावती पर अपने विचार दिए हैं।

वे पद्मावती का रचना-काल ९०७ हि० मानते हैं। उन का विचार है कि पद्मावती ऐतिहासिक उपन्यासों की-सी कविता-बद्ध कथा है। जिस का कलेवर इन ऐतिहासिक बातों के आधार पर रचा गया था कि रत्नसेन चित्तौड़ का राजा, पद्मिनी उसकी रानी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुलतान था जिस ने उस से लड़कर चित्तौड़ का किला जीता था। पद्मावती में इतिहास विरुद्ध बातें भी हैं। सिंहल द्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा नहीं हुआ। उस समय तक कुंभलनेर आबाद भी नहीं हुआ था। अलाउद्दीन ने केवल एक ही हमला चित्तौड़ पर किया था और उस में ही उस ने विजय प्राप्त कर ली थी।

§ ६—रायबहादुर डाक्टर श्यामसुंदरदास जी ने १९३० ई० में 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक ग्रंथ लिखा जिसके कई संस्करण प्रकाशित हुए।

इन के अनुसार जायसी का रचना-काल शेरशाह के राजत्व-काल में सोलहवीं शताब्दी का अंतिम भाग था। इन के रचे तीन ग्रंथ हैं—पद्मावती, अखरावट और आखिरी कलाम। पद्मावती की कथा में ऐतिहासिकता तथा काल्पनिकता का अच्छा समन्वय हुआ है। आखिरी कलाम में मज़हबी कट्टरता का भी पुट है।

ये जायस कसबे के रहने वाले थे। ये बहु-पठित न थे परंतु सूफी साधु संगत किए हुए व्यक्ति थे। इन का भ्रमण भी विस्तृत रहा होगा। पद्मावती में देश भर के भिन्न-भिन्न स्थलों की भौगोलिक स्थिति का जो उल्लेख है, वह बहुत कुछ ठीक है।

पद्मावती में प्रेम-मार्ग की जो मर्मस्पर्शिनी कथा है वह स्वर्गीय प्रेम की अत्यंत व्यापक भावना से समन्वित है।

कवि की मृत्यु संबंधी तिथि का ठीक पता नहीं चलता।

§ ७—इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज़, भाग ६ में रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए० ने एक लेख मलिक मुहम्मद जायसी पर लिखा है।

मलिक मुहम्मद जायसी का नाम मुहम्मद था। मलिक उन की उपाधि थी जो उन को नहीं दी गई थी। इन के पूर्वजों को यह उपाधि इस्लाम धर्म में दीक्षित होने के अवसर पर दी गई थी। ये जायस के रहने वाले थे अतः जायसी कहलाए।

ये बहुत बदसूरत थे और बचपन में ही शाह मुबारक बूदी के शिष्य बन गए। ये अमेठी अपने गुरु की आज्ञा से गए थे।

जायसी ने सात किताबें लिखी थीं। 'ना—नारद तब रोइ पुकारा, एक जोलाहे सों मैं हारा' में कबीर की ओर संकेत नहीं है।

जायसी को फारसी आती थी। उन की अन्योक्ति समझ में न

आने वाली है। वैसे इन के वर्णन सुंदर हैं और इन के बारहमासों का स्थान सारे हिन्दी साहित्य में ऊँचा है।

§ ८—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय जी के हिन्दी साहित्य के इतिहास विषयक भाषण १६३० ई० में प्रकाशित हुए। उन में मलिक मुहम्मद जायसी पर भी प्रकाश डाला गया।

मलिक मुहम्मद ने सूफ़ी सम्प्रदाय के भावों को उत्तमता के साथ जनता के सामने लाने के लिए ही अपने प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावती की रचना की। उन में कट्टरता नहीं पायी जाती। वे अन्य धर्म वालों के प्रति उदार हैं। उन का हिंदू धर्म का ज्ञान विस्तृत है। वे भारतवर्ष के कवि हैं; अतः भारत की प्रकृति का ही चित्र हमारे सामने खींचते हैं।

जायसी अपने समय के पीरों में गिने जाते थे। उन का एक ग्रंथ अखरावट भी है। उस में उन्हों ने प्रेम मार्ग के सिद्धान्तों और ईश्वर प्राप्ति के साधनों का वर्णन बोध-सुलभ रीति से किया है। पद्मावती की भाषा अवधी है परंतु उस पर ब्रज का कुछ प्रभाव पड़ा है। उन की भाषा ठेठ अवधी नहीं है।

§ ६—डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने अपने 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' में हिन्दी कृष्ण काव्य की धारा की विवेचना करते हुए मलिक मुहम्मद जायसी के विषय में थोड़ा-सा लिखा है।

उन के अनुसार जायसी १५४० के लगभग पैदा हुए थे और जायस में रहते थे। ये जन्म के मुसलमान थे। अमेठी के राजा इन का बहुत आदर करते थे। वीर रसात्मक गाथाओं में पद्मावती का स्थान सर्वोच्च है।

कबीर की चौंतीसी के आधार पर इन्हों ने अखरावट लिखा था। जायसी का हृदय प्रेम की कोमल पीर से भरा हुआ था। क्या लोक-पक्ष में और क्या अध्यात्म पक्ष में दोनों ओर उस की गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण प्रतीत होती है।

पद्मावती की रचना संस्कृत के प्रबंध काव्यों की शैली पर न हो कर

फारसी की मसनवी शैली पर हैं। परंतु शृंगार-वीर आदि रसों के वर्णन परंपरागत भारतीय काव्य रचना के अनुसार ही हैं। पद्मिनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौंदर्य की लोकोत्तर भावना में लीन कर देने वाला है।

पद्मावती का ऐतिहासिक आधार १३०३ ई० में होने वाला चित्तौड़ का घेरा है। कविता की भाषा वही है जो जायसी के जमाने में आम तौर से बोल चाल में आती है। इस में फारसी के शब्दों और मुहाविरों की खासी झलक है। आरंभ में पद्मावती फारसी वर्णमाला में लिखी गई थी।

§ १०—श्री चंद्रबली पांडे ने वैशाख १९८८ वि० की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'पद्मावत की लिपि तथा रचना-काल' शीर्षक एक निबंध लिखा था।

आप के विचार से पद्मावती जायसी की प्रतिनिधि रचना है। इस के रचना-काल में थोड़ा मतभेद दो और चार का ही है। उसमें ९४७ हि० ही सही है। पद्मावत कवि की अंतिम रचना है। अखरावट उस से पहले का है। कवि ने पद्मावत कैथी लिपि में ही लिखा था। कैथी लिपि को हिन्दी लिपि कहते हैं। जायसी ने अपने अखरावट में इसी लिपि के अनुसार ककहरा लिखा है। ग्रियर्सन का यह कहना कि पद्मावत जायसी ने फारसी लिपि में लिखा था, महत्वहीन एवं गलत है।

पद्मावती कवि की समय-समय की रचना है। उस के स्तुति खंड को ग्रंथ की इति के उपरांत की रचना मानने में हम असमर्थ हैं। 'सिंहल-द्वीप कथा अब गावौं' में 'अब' शब्द बतलाता है कि इस से पहले भी कुछ कवि लिख चुका है। यह खंड प्रारंभ की रचना भी नहीं है क्योंकि 'जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू' में 'कीन्ह' शब्द हमें ऐसा कहने से दृढ़ता-पूर्वक रोकता है।

पद्मावती का प्रारंभ ग्रीष्म ऋतु में संभवतः दशहरे को हुआ था

[illegible] । [illegible]

११—[illegible] ।

[illegible] ।

१२—श्री चन्द्रबली पांडे ने [illegible] की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में जायसी का जीवन वृत्त दिया है ।

[illegible] के [illegible] होने का कोई प्रबल प्रमाण अभी तक नहीं मिला है । उन की भाषा इस बात की [illegible] नहीं देती । उन का जन्मस्थान जायस ही था । जायसी का [illegible] मुहल्ले में [illegible] था । उन के पूर्वज हिन्दू भी थे, ऐसा नहीं माना जा सकता । मलिक उन की उपाधि है । उन के जन्म-काल के विषय में किसी को कुछ पता नहीं है । [illegible]—'भा अवतार मोर नौ सदी, तीस बरिस ऊपर कवि बदी' के आधार पर ८९० हि० उन का जन्म-काल माना जा सकता है । उन की एक आँख और एक कान बेकार थे । जायसी के माता पिता के अल्प काल में स्वर्गवास हो जाने का कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलता । जायसी जैसा दीन का पाबंद व्यक्ति अविवाहित नहीं रह सकता था । उन के बाल-बच्चे भी थे । संभव है, वे निस्संतान ही रहे हों । जायसी की जीविका खेती थी । उन के दीक्षा गुरु सैयद अशरफ जहाँगीर थे । जायसी अन्य सभी शेख कमाल, सैयद राजे,

रचना काल १५४० ई० है। जायसी को हिन्दू धर्म की बहुत-सी बातें मालूम थीं। हिंदू धर्म एवं संस्कृति के सार को वे भली भाँति जानते थे। उन्हों ने इस के लिए हिन्दू पंडितों से वर्षों तक संस्कृत पढ़ी थी। और उन्हें संस्कृत के काव्य-शास्त्र का पूरा ज्ञान था।

सारे काव्य में चाहे वह स्त्री के शरीर का वर्णन हो या पुरुष का, सर्वत्र एक अध्यात्मिकता का पुट दिखलाई पड़ता है।

§१५—डा० सूर्यकांत शास्त्री ने अपनी पदुमावति के प्रारंभ में एक छोटी-सी भूमिका में जायसी पर प्रकाश डाला है।

उन के अनुसार पद्मावती एक अन्योक्ति है, जिस में आत्मा की परमात्मा तक पहुँचने की यात्रा का वर्णन है। जायसी एक बड़े रहस्यवादी थे। इन्हों ने उस प्रेम के गीत गाए जो हमारे शरीर में पैदा होता और पलता है परंतु होता ईश्वर के लिए है। वासना काव्य के लिए अपरिचित वस्तु नहीं है। परंतु उन के काव्य में वासना की धारा में प्रवाह आध्यात्मिकता का है।

जायसी हिन्दू मुसलिम एकता चाहते थे। उन के विषय में हमें बहुत कम ज्ञात है। वे जायस के रहने वाले थे और वहाँ पर कंचाने मुहल्ले में ८३० हि० में पैदा हुए थे। वे बदसूरत थे और बचपन में ही काने तथा एक कान के बहरे हो गए थे। उन्हें कुछ भी शिक्षा नहीं मिली थी और उन का विवाह जायस में ही हुआ था। उन के बच्चे भी थे परंतु उन की मृत्यु उन के सामने ही हो गई थी। वे खेती करके अपना पेट पालते थे। वृद्धावस्था में उन्हों ने संसार से वैराग्य लेकर दूर-दूर तक भ्रमण किया। अंत में वे अमेठी में आकर रहने लगे। वहीं उन की मृत्यु ९४९ हि० में हुई।

पद्मावती का महत्व इस में भी है कि उस में उस समय की अवधी का जन-बोली वाला रूप सुरक्षित है। उस में कवि ने थोड़े से फारसी के शब्द मात्र और जोड़ दिए हैं। उन्हों ने फारसी लिपि का प्रयोग किया और प्रत्येक शब्द का वही अक्षर-विन्यास रखा जैसा कि

उच्चारण के अनुसार था ।

१६—पं० रामचंद्र शुक्ल ने १९२४ ई० में जायसी की दो रचनाओं पद्मावती तथा अखरावट का संग्रह एक विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित किया । १९३५ ई० में इस का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ जिस में जायसी की एक तीसरी रचना आखिरीकलाम भी सम्मिलित कर दी गई थी साथ ही साथ भूमिका भी सम्हाल दी गई थी ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जायसी का जन्म ९०० हि० (१४९२ ई०) में हुआ था । उन्हों ने ९१६ ई० में आखिरी कलाम बनाया और ९२७ में पद्मावत प्रारंभ कर ९४७ के लगभग समाप्त किया था। जायसी ने पद्मावत प्रारंभ कर जायस को छोड़कर यहां वहां बहुत दिन बिताए और अन्त में वहीं पर आकर उसे पूरा किया । जायसी कुरूप और काने थे । वे एक गृहस्थ किसान के रूप में रहा करते थे। और शायद इन के कुछ पुत्र भी थे । राजा अमेठी इन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे । ये अति वयोवृद्ध होकर मरे थे । इन की गुरु परंपरा चिश्तिया निज़ामिया परंपरा में थी । इन्हों ने सूफी मुसलमान फकीरों के सिवा कई संप्रदायों के हिन्दुओं का भी सत्संग किया था । ये सच्चे जिज्ञासु थे और हरएक मत के साधु महात्माओं से मिलते-जुलते रहते थे और उन की बातें सुना करते थे । इस उदार सारग्राहिणी प्रवृत्ति के साथ ही साथ उन्हें इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर पूरी श्रद्धा थी । ये कबीर के समान अहंकारी न थे । अपने को सर्वज्ञ मानकर पंडितों और विद्वानों की निंदा और उपहास करने की प्रवृत्ति उन में न थी । पर वे कबीर को बड़ा साधक मानते थे । पद्मावती, अखरावट तथा आखिरी कलाम इन की प्राप्त रचनाएं हैं और पोस्तीनामा तथा नैनावत इन की लिखी अप्राप्त रचनाएं कही जाती हैं ।

पद्मावती का पूर्वार्द्ध एकदम कल्पित कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक । अपनी कथा को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं के ब्योरे में जायसी ने जहाँ तहाँ फेर-फार किए हैं । पद्मिनी

का सिंहल में होना गोरखपंथी साधुओं की कल्पना है। पूर्वार्द्ध की कथा अनुमानतः लोक प्रचलित रही होगी और वहीं से जायसी ने ली होगी।

पद्मावती का प्रेम गुण-श्रवण पर आधारित है। इस में मानसिक पक्ष प्रधान है। और आदर्श लैला, मजनूं; शीरीं, फरहाद से मिलता जुलता है। परंतु यह लोक पक्ष शून्य नहीं है। एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के संपर्क का स्वरूप दिखाते गए हैं। इस से उन की प्रेम गाथा पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है।

पद्मावती के गुण श्रवण मात्र से रत्नसेन का पूर्ण वियोगी बन जाना अस्वाभाविक-सा लगता है। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम का लक्षण उसी समय से प्रारंभ होता है जब कि वह पद्मावती को शिव मंदिर में देख लेता है। रत्नसेन के पूर्व राग में जो अस्वाभाविकता है उस के मूल में लौकिक प्रेम तथा ईश्वर प्रेम दोनों को एक साथ व्यंजित करने का प्रयत्न है। पद्मावती की प्रारंभिक वियोगावस्था भी काम-जनित है, प्रेम-जनित नहीं। योग का नाम लेकर यहाँ पर वियोग की दुहाई देना अस्वाभाविक ही लगता है। विवाह हो जाने पर वह दो बार अपने प्रेम का बल दिखलाती है। एक तो रत्नसेन के बंदी बनने पर और दूसरे उस की मृत्यु पर। नागमती का गार्हस्थ प्रेम भी अत्यंत मनोहर है। पुरुष के बहु विवाह प्रथा से उत्पन्न प्रेम मार्ग की व्यावहारिक जटिलता को भी लेखक ने जिस दार्शनिक ढंग से सुलझाया है वह ध्यान देने योग्य है।

जायसी का विरह वर्णन कहीं कहीं पर अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मज़ाक की हद पर नहीं पहुँच पाया है उस में गांभीर्य बना हुआ है। इन की अत्युक्तियां बात की करामात प्रतीत नहीं होतीं, हृदय की अत्यंत तीव्र व्यथा का संकेत प्रतीत होती हैं। ऊहात्मक पद्धति का भी जायसी ने प्रयोग किया है परंतु बहुत कम। जायसी ने विरह वर्णन में

हेतूत्प्रेक्षा का भी सहारा लिया है। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। उसे पक्षियों तक की सहानुभूति प्राप्त है। नागमती का संदेश भी अत्यंत मर्मस्पर्शी है। विप्रलंभ शृंगार ही पद्मावती में प्रधान है। विरह-दशा का वर्णन कवि ने भारतीय पद्धति पर किया है। उस में वीभत्स चित्रों का अभाव-सा है परंतु सर्वथा अभाव नहीं। बारहमासे में मुख्यतः दो बातें देखने की हैं—१. प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन २. दुख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना। अपनी भावुकता का बड़ा भारी परिचय जायसी ने इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरह दशा में अपना रानीपन बिल कुल भूल जाती है।

यद्यपि पद्मावती में वियोग शृंगार ही प्रधान है परंतु संयोग शृंगार का भी पूरा वर्णन है। बारहमासे की भाँति यहाँ ऋतु-वर्णन उद्दीपन के लिए दिया गया है। विवाह के उपरान्त पद्मावती और रत्नसेन के समागम का वर्णन कवि ने विस्तार के साथ किया है। सखियों का विनोद इस अवसर पर सफल नहीं है। परंतु ऐसे बाधक प्रसंगों के होते हुए भी वर्णन अत्यंत रस-पूर्ण है। जायसी ने हावों की योजना नहीं के बराबर की है। जायसी ने पद्मावती को नवोढ़ा का रूप पहले दिया है और फिर शीघ्र ही प्रौढ़ा का। यह खटकने वाली बात है। संयोग शृंगार में कुछ वर्णन अश्लील है परंतु सर्वत्र कवि ने प्रेम का भावात्मक रूप ही प्रधान रखा है। पाँसों का खेल शिथिल है। जायसी का प्रेम विषमता से समता की ओर जाता है। इस के मूल में ईश्वर प्रेम की व्यंजना है।

जायसी संयोग एवं वियोग दोनों में उसी परमात्मा के लिये दिव्य प्रेम की तस्वीर-सी खींचते चलते हैं। पद्मावती अन्योक्ति नहीं है वरन एक समासोक्ति मात्र है। सारी घटनाएं अपना दूसरा अर्थ नहीं रखतीं। कवि ने हठयोग की जहाँ तहाँ व्यंजना दी है।

पद्मावती के कथानक से यह स्पष्ट है घटनाओं को आदर्श परि-

णाम पर पहुँचाने का लक्ष्य कवि का नहीं है। संसार की जैसी गति दिखलाई पड़ती है वैसी ही उन्होंने दिखलाई है। कवि की दृष्टि में मनुष्य जीवन का सच्चा अंत करुण क्रन्दन नहीं, पूर्ण शांति है। जिस के प्रभाव से सारी कथा में रसात्मकता आ जाती है। मनुष्य जीवन के मर्म-स्पर्शी स्थल पद्मावती के कथा-प्रवाह के बीच-बीच में आते रहते हैं। कवि ने इतिवृत्तात्मक तथा रसात्मक दोनों प्रकार की घटनाएं अपनी कथा में रखी हैं। जायसी का संबंध-निर्वाह अच्छा है। एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की कथा बिल्कुल लगी हुई है। प्रासंगिक वृत्त आधिकारिक से पूरी तरह लगे हुए हैं। प्रासंगिक वृत्त आवश्यकतानुसार ही रखे गए हैं। परंतु कहीं-कहीं पर व्यर्थ, की बातें भी हमें मिलती हैं।

वस्तु वर्णन के लिए जायसी ने घटना-चक्र के बीच उपयुक्त स्थलों को चुना है और उन का विस्तृत वर्णन अधिकतर भाषा कवियों की पद्धति पर होते हुए भी बहुत ही भावपूर्ण है। इस से उन की जानकारी का तो परिचय मिलता है परंतु जी भी ऊबने लगता है।

बहुत गहरे भावों और गूढ़ मानसिक विकारों तक जायसी की दृष्टि नहीं पहुँची। पद्मावती में रति भाव की प्रधानता है पर उस के अंतर्गत भी हम असूया, गर्व आदि दो-एक संचारियों को छोड़ कर क्रीड़ा, अवहित्था आदि अनेक भावों का कहीं पर पता नहीं पाते। परंतु भाव के उत्कर्ष में वे बढ़े-चढ़े हैं। यह उत्कर्ष विप्रलंभ में ही अधिक दिखलाई पड़ता है। अभिलाषा तथा आशा का वर्णन संभोग में सुन्दर है। वितर्क का भी प्रयोग किया गया है। शोक के दो प्रसंग पद्मावती में हैं, पहला रत्नसेन के योगी होने पर और दूसरा उस की मृत्यु पर। इन में पहला पात्रों द्वारा व्यंजित है और दूसरा दृश्य चित्रण के द्वारा। क्रोध का प्रसंग केवल वहाँ आया है जहाँ रत्नसेन को अलाउद्दीन की चिट्ठी मिलती है। परंतु वहाँ भी रौद्र रस नहीं। क्रोध का वह आवेश नहीं है जो नीति और विवेक को भुला दे। वीर रस का वर्णन अच्छा

हैं। वीभत्स रस बहुत थोड़ा है और हास्य रस का सर्वथा अभाव है।

जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग अधिकतर किया है। जायसी के वर्णन अधिकतर परंपरानुगत हैं। इस कारण उन के उपमान भी कवि समय-सिद्ध ही अधिक हैं। कहीं-कहीं पर उपमानों में वीभत्सता आ गई है जो रस-विरोधिनी है। सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा ,का व्यवहार अधिक मिलता है। बात की काट-छांट वाले अलंकार जायसी में कम हैं।

जायसी का ध्यान स्वभाव-चित्रण की ओर अधिक नहीं था। उन के पात्रों में कोई 'व्यक्ति' नहीं है। मनुष्य-प्रकृति के निरीक्षण का प्रमाण हमें जायसी में नहीं मिलता। इतना होने पर भी कोई नहीं कह सकता कि पद्मावती में मानवी प्रकृति के चित्रण का सर्वथा अभाव है। पद्मावती में प्रारंभ से लेकर अंत तक चलने वाले पात्र तीन हैं—पद्मावती, रत्नसेन और नागमती। इन में से किसी के चरित्र में कोई भी व्यक्तिगत विशेषता कवि ने नहीं रखी है। ये प्रेमी और पति-पत्नी के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। रत्नसेन में जो कष्ट-सहिष्णुता, धीरता या साहस है उस में व्यक्तिगत विशिष्ट लक्षणों का सर्वथा अभाव है। सभी आदर्श प्रेमी हैं। रत्नसेन में कुछ जातिगत विशेषताएं भी हैं। वह क्षत्रिय है अतः उस में प्रतिकार-वासना है। पद्मावती में बुद्धि पर्याप्त मात्रा में है। उस में स्त्री जातिगत विशेषताएं, स्त्री सुलभ प्रेम-गर्व और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या मिलती है। पद्मावती का उज्ज्वल रूप सती का है। नागमती में रूपगर्विता के दर्शन पहले होते हैं फिर सपत्नी के प्रति ईर्ष्यालु और फिर पति-प्रेमिका। रत्नसेन और बादल की मा साधारण माता के ही स्वरूप हैं। राघव चेतन का स्वरूप समाज की उस भावना का पता देता है जो लोकप्रिय वैष्णव धर्म के कई रूपों में प्रचार के कारण शाक्तों, तांत्रिकों या वाममार्गियों के विरुद्ध हो रही थी। इस प्रकार राघव चेतन एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधि है। इस के अतिरिक्त अहंकार, अविवेक, कृतघ्नता, लोभ, निर्ल-

क्रूरता और हिंसा द्वारा ही उस का हृदय संघटित रहता है। कवि ने क्षत्रिय वीरता के दो अत्यंत निर्मल आदर्श गोरा और बादल हमारे सामने रखे हैं। इन में खरापन, आत्मसम्मान, दूरदर्शिता और स्वामि-भक्ति है। बादल की स्त्री प्रारंभ में तो सामान्य स्त्री के रूप में है परंतु बाद में वीर पत्नी तथा क्षत्राणी का अपना रूप प्रगट करती है। देवपाल की दूती सामान्य दूती है। अलाउद्दीन अपने बल प्रताप और श्रेष्ठता के अभिमान में यह नहीं सहन कर सकता किसी के पास कोई ऐसी वस्तु रहे जैसी उस के पास न हो। वह सच्चा वीर है।

जायसी की पूरी आशा विधि पर थी। वे वेद, कुरान आदि को लोक कल्याण मार्ग प्रतिपादित करने वाले वचन मानते थे। जो वेद कथित मार्ग को छोड़ कर यहाँ वहाँ चलते हैं जायसी उन्हें अच्छा नहीं समझते। जायसी ने उदार प्रेम-मार्ग की ओर अपना अनुराग प्रगट किया है। जायसी ने सूफी अवस्थाओं को भी दिया है। पद्मावती में अद्वैतवाद की झलक स्थान-स्थान पर दिखलाई पड़ती है। प्रतिबिम्ब-वाद भी उस में है। उन्हों ने एक पूरा रूपक बाँध कर पिण्ड को ही ब्रह्माण्ड माना है। वे यह मानते हैं कि एक ब्रह्म से ही चित्-अचित् सृष्टि निकली। उनके सामयिक विचार साधारण ही थे। स्त्रियों को वे विलास की वस्तु ही मानते थे।

हिंदी में रमणीय सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद जायसी में ही है। वे कहीं कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का पुरुष के समागम के हेतु प्रकृति के शृङ्गार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।

जायसी में बहुत अच्छी-अच्छी सूक्तियाँ हैं। पद्मावती के बीच-बीच में फुटकल प्रसंग भी हैं। जैसे दान महिमा, द्रव्य महिमा, विनय आदि। जायसी की जानकारी काफ़ी थी। उन्हें संस्कृत या काव्य शास्त्र का ज्ञान न था। सात समुद्र आदि भी जैसे सुने वैसे उन्हों ने लिखे। भूगोल भी उन को कम आता था। परंतु भारतवर्ष का साधारण ज्ञान

काफी था। इतिहास एवं ज्योतिष का ज्ञान भी पर्याप्त था। व्यवहार ज्ञान भी उन्हें काफी था।

जायसी की भाषा अवधी है। इस में तो चलते हुए वाक्य एवं मुहावरे हैं। कहीं-कहीं छोटे-मोटे दोष भी पाए जाते हैं। जायसी ने कहीं पर जान बूझ कर शब्दों को नहीं बिगाड़ा है। उन की भाषा बहुत ही मधुर है परंतु वह माधुर्य 'भाषा' का है संस्कृत का नहीं। उस में ठेठ भाषा ही अधिकतर है।

§ १७—श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' ने अपनी सुकवि समीक्षा नामक पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी पर एक लेख लिखा है।

इन के विचार से पद्मावती आरंभ करने के कुछ समय बाद के ये जायस में आकर रहने लगे थे। इन के लिखे हुए दो ग्रंथ हैं—पद्मावती और अखरावट। पद्मावती फारसी मसनवियों के ढङ्ग पर लिखी हुई एक लंबी चौड़ी प्रेम कहानी है।

जायसी ने कहानी के अंत में जो सांकेतिक कोष दिया है उस का अर्थ केवल इतना ही लेना चाहिए कि पद्मावती की प्रेम कथा में पारमार्थिक तत्व का अध्यारोप है। सारी कथा जीवात्मा की परमात्मा को पाने के लिए व्याकुल चेष्टा तथा दोनों के सम्मिलन की कहानी है। यदि हम जायसी की उपर्युक्त व्याख्या को इस से अधिक मात्रा में स्वीकार करते हैं तो उन के रूपकांगों के संबंध के बारे में कुछ सन्देह उत्पन्न हो जाते हैं। पद्मावती यदि बुद्धि है तो रत्नसेन परमात्मा के लिए नहीं दौड़ता बुद्धि के लिए दौड़ रहा है। माया और शैतान दोनों को मानना भी बेकार है। एक ही पर्याप्त है। माया ब्रह्म की प्राप्ति के पूर्व ही बाधाएं डालती हैं, बाद में नहीं। परंतु पद्मावती में तो रत्नसेन-पद्मावती विवाह के पश्चात बाधा डाली जा रही है। रत्नसेन के पारस्परिक युद्ध में मारे जाने का अन्योक्तिमूलक अर्थ कुछ भी नहीं है। पद्मावती का सती होने का भी अर्थ समझ में नहीं आता। नागमती सती होते समय पद्मावती की ही भाँति अपने स्थिर प्रेम के शब्द कहती

है। वहाँ पर पद्मावती एवं नागमती में कोई अन्तर नहीं है। 'दुनिया धंधाः ब्रह्म की बराबरी कैसे कर सकता है?

जायसी संसार की नश्वरता एवं हठयोग पर ज़ोर देते थे। वे सूफ़ी थे। उन की पद्मावती मसनवियों के ढङ्ग की होने पर भी महाकाव्य है और भौतिक प्रेम कहानी के बहाने उस में कवि के ईश्वर संबंधी उल्लास, प्रेम तथा विरह की मनोमुग्धकारी व्यंजना है। जायसी हमारे सामने रहस्यवादी कवि के नाते भी उपस्थित होते हैं।

जायसी बड़े ही भावुक कवि थे। उन के रोम-रोम में जैसे भावुकता भरी थी। नागमती का बारहमासा साहित्य में अद्वितीय है। भाव-चित्रण के अतिरिक्त दृश्य-चित्रण भी जायसी का अद्वितीय हुआ है। इन्हों ने अलंकारों का बहुत अधिक प्रयोग किया है और सब तरह के अलंकार ये काम में लाए हैं।

जायसी का कथा-संबंध-निर्वाह अच्छा है। चरित्र-चित्रण में वे कच्चे हैं। जायसी की भाषा उस समय की बोलचाल की है और कहने का ढङ्ग अकृत्रिम है।

जायसी का स्थान हिंदी साहित्य में बहुत ऊँचा है।

१८—डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रंथ में जायसी के विषय में अपने सुशृंखलित विचार हमारे सामने रखे हैं।

जायसी जायस के रहनेवाले थे और चिश्तिया निज़ामियाँ शिष्य परंपरा में ग्यारहवें शिष्य थे। शेरशाह का आश्रय भी इन्हों ने प्राप्त किया था। ये कुरूप थे। इन के दो प्रधान मित्र यूसुफ़ मलिक और सलोने सिंह थे। ये गाज़ीपुर और भोजपुर के महाराज जगतदेव (आविर्भाव १५८४ वि०) के आश्रित भी रहे थे। बाद में अमेठी नरेश के विशेष कृपा पात्र रहे।

इन्हों ने तत्कालीन प्रचलित सूफ़ी सिद्धांतों को सरल और मनोरंजक रूप में रखकर जनता को आकर्षित किया। सूफ़ी सिद्धान्तों को हिन्दू

धर्म के प्रचलित विवरणों से सम्बद्ध कर इन्हों ने नवीन प्रकार से हिन्दू हृदय को वशीभूत किया। अभी तक सूफी कवियों ने केवल कल्पना के आधार पर प्रेम कथा लिखकर अपने सिद्धान्तों का प्रकाशन किया था पर जायसी ने कल्पना के साथ साथ ऐतिहासिक घटनाओं की शृंखला सजाकर अपनी कथा को सजीव कर दिया है।

इन्हों ने पद्मावती की रचना ९४७ हि० में की थी। इस की कैथी लिपि की प्रतियाँ बहुत अशुद्ध हैं और उन में पाठांतर भी अनेक हैं। इस की फारसी प्रतिलिपियों में उस समय की बोली सुरक्षित है। जायसी कबीर से अत्यधिक प्रभावित थे। हठयोग की सारी प्रवृत्ति तो इन्हों ने कबीर से ही ली थी। पद्मावती में धार्मिक सहिष्णुता उच्चकोटि की है। सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धान्तों की रूप-रेखा है, पर वे इस आध्यात्मिक संकेत को निबाह नहीं सके। यह संकेत स्थल-स्थल पर ही है। वे अपनी प्रेम कहानी के प्रवाह में सभी घटनाओं को कहते चलते हैं और आध्यात्मिकता भूल जाते हैं। जब मुख घटनाओं की समाप्ति पर उन्हें अपने अध्यात्मवाद की याद आती है तो उस का निर्देश कर देते हैं।

जायसी ने हिन्दू मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में प्रेम का बीज बोने का प्रयत्न किया। वे प्रत्येक धर्म के लिए सहिष्णु थे।

पद्मावती की रचना-शैली मसनवी की ढंग की है। उन की पूरी आस्था इस्लाम पर थी। उन के विरह-वर्णन में आई हुई वीभत्सता मसनवी शैली के कारण है। जायसी के सारे पात्रों का चरित्र-चित्रण हिन्दू जीवन के आदर्शों से पूर्ण है। परंतु पद्मावती का सब से बड़ा सौन्दर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है। साहित्यिक दृष्टि से नहीं प्रत्युत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पद्मावती प्रेम काव्य की एक चिरस्मरणीय रत्न रहेगी।

§ १९—पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् १९४० ई० में मलिक मुहम्मद जायसी के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। ये शुक्ल जी के जायसी विषयक अंतिम प्राप्त

विचार हैं इस कारण महत्वपूर्ण हैं।

शुक्ल जी 'भा अवतार मोर नौ सदी' का अर्थ निश्चित रूप से यह नहीं मानते कि जायसी का जन्म ९०० हिजरी में हुआ था। पद्मावती की रचना जायसी ने ९२७ हि० में की थी। बाद में १९-२० वर्षों के बाद शेरशाह के समय में उसे पूरा किया था। जायसी की मृत्यु ९४९ हि० में हुई थी, यह भी सही नहीं प्रतीत होता।

ये काने और देखने में कुरूप थे। इन्हों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रत्यक्ष जीवन की एकता को सामने रखने की आवश्यकता पूरी की। पद्मावती की कहानी में इतिहास और कल्पना का योग है। इन्हों ने जनता में जो रूप इस कथा का प्रचलित था, उसी से अपनी कहानी ली है।

यद्यपि पद्मावती की रचना संस्कृत प्रबंध काव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर नहीं है, फारस की मसनवी शैली पर है पर शृंगार-वीर आदि के वर्णन चली आती हुई भारतीय काव्य-परंपरा के अनुसार ही हैं। इस का पूर्वार्द्ध तो एकांत प्रेम-मार्ग का ही आभास देता है, पर उत्तरार्द्ध में लोक-पक्ष का भी विधान है। पद्मिनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को लोकोत्तर भावना में निमग्न करने वाला है। योगी रत्नसेन के कठिन मार्ग के वर्णन में साधक के मार्ग के विघ्नों (काम क्रोध आदि विकारों) की व्यंजना है।

ई २०—१९९७ वि० की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में श्री सैयद आले मेहर साहब ने मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन चरित्र लिखा है।

उन के अनुसार जायसी का जन्म ९०० हि० (१४९४ ई०) में जायस में हुआ था। इन के जन्म के समय भूचाल आया था। जब ये सात बरस के थे तभी इन के चेचक निकली थी। इस में इन की बाईं आँख जाती रही। इस से ये बदसूरत हो गए। साथ ही साथ बाएँ कान से बहरे, एक तरफ के हाथ पाँव से बेकार और कुबड़े हो गए थे। इन के माँ-बाप बचपन में ही मर चुके

थे। फलतः ये ननिहाल चले गए और फिर जवानी में जायस वापिस आए। फिर ये कालपी गए और १५३० ई० में वहाँ से फिर लौट आए। मलिक जी का संबंध सबों से विशेष था। मलिक साहब अंतिम दिनों में मँगरा के वन में रहे थे। मलिक की पैठ अकबर के दरबार में भी हुई थी।

मलिक ने आखिरी कलाम कालपी में लिखा था। मलिक जी धर्म के विचार से सूफी थे। 'मलिक' इन की पैतृक उपाधि थी।

मलिक जी की जीवनी की तरह उन के चार मित्रों का हाल भी संदिग्ध है। वैसे मलिक जी बड़े अच्छे स्वभाव के थे। वे हर प्रकार के लोगों से प्रसन्नता-पूर्वक मिलते थे। वे पहुँचे हुए फकीर और प्रभावशाली आदमी थे। दान देना उन्हें विशेष पसंद था। नम्रता इन के स्वभाव में थी। आखिरी कलाम पद्मावती और अखरावट दोनों से पहिले का है। इस का असली नाम आखिरीयत नामा है। पोस्ती-नामा की रचना उन्हों ने पद्मावती और अखरावट से पहले की थी। यह उन्हों ने अपने पीर के विषय में ही लिखा था।

यह कहना कि मलिक जी की मृत्यु ६४६ हि० में हुई, गलत है। मालूम होता है कि ६४६ कलम की गलती है। यह वास्तव में ६६६ रहा होगा।

इन की क़ब्र मँगरा के वन में राम नगर (रियासत अमेठी, जिला सुल्तानपुर, अवध) के उत्तर की ओर एक फलांग पर है। इस की पक्की चहारदीवारी अभी मौजूद है। इस पर अब तक चिराग जलाए जाते हैं और एक कुरान पढ़ने वाला भी नियुक्त था जिस का सिल-सिला १६१५ ई० में बंद हो गया।

§ २१—नागरीप्रचारिणी पत्रिका के एक अंक में श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी में प्रेम गाथा साहित्य और मलिक मुहम्मद जायसी' शीर्षक एक निबंध लिखा था जिसे उन्हों ने थोड़ी अदल-बदल के साथ 'हिंदी के कवि और काव्य' भाग ३ में फिर प्रकाशित करवाया।

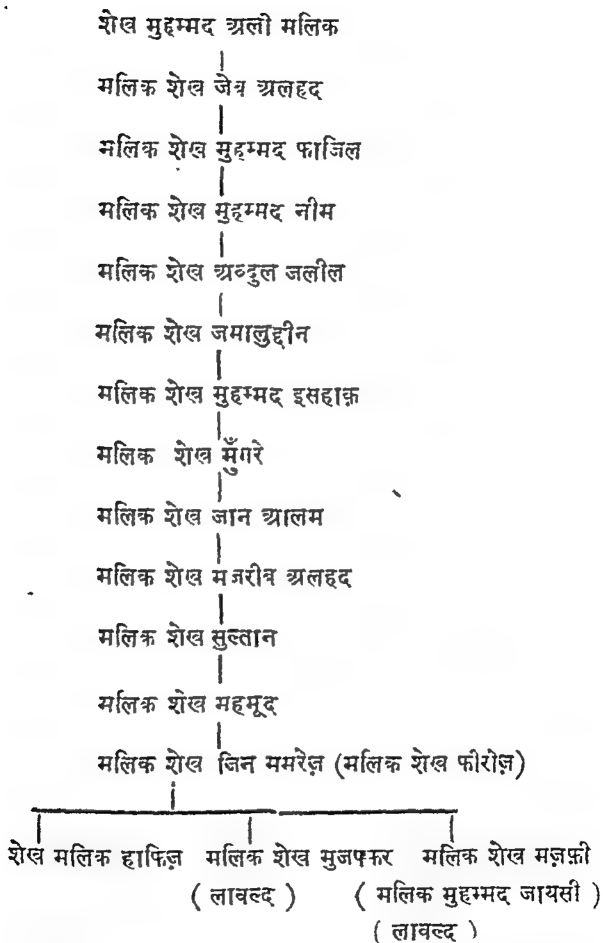
इन के विचार से जायसी की जन्म-मरण तिथि, माता, पिता आदि के संबंध में प्रमाणिक रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। जायस इन का जन्म स्थान न रहा हो परंतु क्रिया-कलाप का केन्द्र अवश्य रहा था। शीतला देवी ने इन के शरीर और स्वरूप के साथ मन-माना अत्याचार किया था। पद्मावती की रचना का आरंभ इन्हों ने ६४७ हि० में किया था। इन के गुरु शेख मोहिदी थे। ये बड़े विनय शील थे। इन के दो ही ग्रंथ—पद्मावती और अखरावट प्राप्त एवं प्रकाशित हैं।

पद्मावती की कहानी का पूर्वार्द्ध तो कल्पित परंतु उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। इन के वर्णनो में कहीं-कहीं पर वीभत्सता आ गई है। ये रहस्यवादी कवि थे।

§ २२—सन् १६४१ में सैयद कल्बे मुस्तफा ने एक पुस्तक 'मलिक मुहम्मद जायसी' नामक उर्दू में लिखी है।

उन का विचार है कि मुसलमान भारत में आकर थोड़े दिनों के पश्चात् ही यहाँ पर हिलमिल गए। मुसलमानों के एक वर्ग ने हिंदी अपनाई। कुतुबन के अतिरिक्त पांच प्रेम कहानियाँ और लिखी गईं उनमें मधुमालती जायसी से पहले की मिल गई है।

जायसी का जन्म ६०० हिजरी=१४६५ ई० में जायस में हुआ था। लेकिन आज के जायस से उस समय के जायस की कल्पना नहीं की जा सकती है। मलिक मुहम्मद के पूर्वज अरबी थे। उनका वंश इस प्रकार है—



ये चेचक के कारण बदसूरत हो गए थे। इन की एक आँख जाती रही थी। दूसरे पिता बचपन में ही न रहे थे। ये साधुओं के साथ फिरने

एवं रहने लगे थे। मलिक एक उपाधि थी। खिलजी राजवंश के समय में यह उपाधि नवाबों को दी गई थी। ये खेती के द्वारा पेट पालते थे। इन के सात बेटे और चार मित्र थे।

जायसी सच्चे मुसलमान थे। ये सब धर्मों में विश्वास तो रखते थे परंतु इस्लाम को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। ये सूफी थे। ये कर्मफल में विश्वास करते थे। ये कुरान पढ़े थे और फारसी भी जानते थे तथा साधु-संगत मे हिन्दू धर्म के विषय जान गए थे। ये संस्कृत नहीं जानते थे। इन्हें थोड़ा-सा भौगोलिक ज्ञान भी था। इन का सिंहल बम्बई के पास अरब सागर में था।

कवि ने एक प्रचलित कहानी में ऐतिहासिक नाम दिए और साथ ही साथ कुछ ऐतिहासिक घटनाएं भी जोड़ी हैं। इन्हें कुछ ज्योतिष का भी ज्ञान था। इन का प्रभुत्व काफी था परंतु उन में विनय-शीलता थी। इन्हों ने कोई नया पंथ कबीर की भांति नहीं चलाया।

इन्हों ने कुछ नैतिक उपदेश भी दिए हैं।

इन की मृत्यु १०४९ ई० में हुई। इन की कब्र रामनगर के पास है।

पद्मावती की कहानी में पद्मावती की कथा वाला भाग अनैतिहासिक है। इस कहानी में रत्नसेन भी काल्पनिक था। अलाउद्दीन के समय में कोई रत्नसेन चित्तौड़ का राजा न था। शेरशाह के समय के राणा सांगा का बेटा रत्नसेन था जो चित्तौड़ का शासक था। डोलों में राजकुमारियों के बैठने की घटना भी तभी हुई थी। जौहर की घटना भी उस समय घटी थी। गोरा बादल वास्तव में एक ही व्यक्ति था। गयासुद्दीन खिलजी ने पद्मिनी स्त्री अपने लिए ढुँढवाई थी।

जायसी ने पद्मावती में जिस प्रेम का चित्रण किया है उस में भारतीय एवं फारसी दोनों का मिश्रण है। जायसी के पात्र सांकेतिक कोष के अनुसार चित्रित किए गए हैं।

आत्मा का विरह स्त्री की ओर से चित्रित है। यह भारतीय प्रणाली का पालन है।

जायसी ने 'मरतावाई' को मरताया रूप में प्रयुक्त किया है। अन्यथा उसकी भाषा सुन्दर है।

इसका रचना काल १५४२ ई० है क्योंकि शेरशाह की शाहे वक्त रूप प्रशंसा है तथा उसकी तोपों एवं फिरंगियों की चर्चा है। पुर्तगालियों का दौरा ६४५ ई० (१५३८ ई०) के लगभग होता है। कोई कारण नहीं कि स्तुति खंड बाद में ही लिख गया हो।

यह फारसी लिपि में लिखा गया था।

§ २३—सन् १६४४ ई० में श्री एलक्जेण्डर ग्रियर्सन शिरेफ महोदय ने सर जार्ज ग्रियर्सन के पद्मावती के अनुवाद को पूरा कर बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी की तरफ से प्रकाशित करवाया। इस अनुवाद के प्रारम्भ में श्री शिरेफ महोदय की लिखी हुई एक छोटी-सी भूमिका है जिस में उन्हों ने थोड़ा-सा प्रकाश मलिक मुहम्मद जायसी तथा उन की कृतियों पर डाला है।

जायसी जायस के ही थे। वे कहीं बाहर से आकर वहाँ नहीं बसे थे। 'तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू' का अर्थ अन्योक्ति-मूलक लेना चाहिये। जायसी की तीन रचनाएं हमें प्राप्त हैं -आखिरी कलाम, पद्मावती तथा अखरावट। आखिरी कलाम के अनुसार जायसी का जन्म ६०० हि० अर्थात् १४९४ ई० में हुआ था जब कि भूकंप आया था। पद्मावती की रचना १५४० ई० में हुई थी। इस का कुछ अंश कवि ने वयोवृद्ध हो जाने पर लिखा था। अखरावट इन दोनों के बाद की रचना है। जायसी की एक आंख और एक कान अशक्त थे। यह चेचक के कारण था जिस ने उन का चेहरा भी बदसूरत कर दिया था। शायद इसी कारण वे धर्म की ओर झुके। जायसी अंतिम दिनों में अमेठी में रहने लगे थे। उन की मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

जायसी की कृतियों में सूफी तत्त्वों पर बहुत अधिक जोर समालोचना में दिया जाता रहा है। परंतु वे कवि सब से पहले हैं। उपसंहार में जो उन्होंने कुंजी दी है वह ताले में ठीक नहीं बैठती। उन्हों ने अपनी

कहानी एक अन्योक्तिमूलक सूफी मसनवी के रूप में लिखी है और संसार में जो कुछ भी सुंदर देखा इस में रख दिया है। तुलसीदास ने आगे चलकर उसी की नकल की।

फिर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जायसी में सौन्दर्य को ग्रहण करने की भावना है। उन की सहनशीलता और समझदारी ने उन्हें पैग़म्बर बना दिया। वे हिन्दू और मुसलमान में अंतर ही नहीं मानते थे।

संक्षेप में जायसी विषयक १९४४ तक के प्रमुख अध्ययनों की यही रूप-रेखा है।

विचार पक्ष

१—आध्यात्मिक विचार

§ १—मलिक मुहम्मद जायसी के आध्यात्मिक विचार निम्न वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—

(१) ईश्वर या खुदा संबंधी विचार[१]

(२) जीव संबंधी विचार[२]

(३) जगत संबंधी विचार[३]

(४) इस जीवन के साध्य संबंधी विचार[४]

(५) इस साध्य को प्राप्त करानेवाले साधनो संबंधी विचार[५]

§ २—ईश्वर के विषय में जायसी का विचार है कि वह एक है। वे एक ही करतार को अपने पद्मावती के प्रारंभ में याद करते हैं—

सुमिरौं आदि एक करतारू।[६]

और प्रारंभ में उसी एक राजा का वर्णन करते हैं—

आदि एक बरनौं सोइ राजा।[७]

एक तीसरे स्थल पर वे यह बात स्पष्ट कहते हैं कि वह परमात्मा एक ही है, दो नहीं—

एक अकेल, न दूसर जाती।[८]

[१] ये विचार प्रायः पद्मावती तथा आखिरी कलाम के प्रारंभ और अखरावट में जहाँ तहाँ बिखरे हुये मिलते हैं।

[२] ये विचार अधिकतर अखरावट में ही मिलते हैं।

[३] ये विचार भी अधिकतर अखरावट में मिलते हैं।

[४] ये विचार भी अधिकतर अखरावट में मिलते हैं।

[५] ये अखरावट, पद्मावती तथा आखिरी कलाम में बिखरे हुए मिलते हैं।

[६] जा० ग्रं० पृष्ठ १

[७] वही पृष्ठ ३

[८] वही पृष्ठ ३४३

आपुहि कागद, आपु मसि, आपुहि लेखनहार ।
आपुहि लिखनी, आखर, आपुहि पँडित अपार ॥[1]

वह दर्पण के रूपक के द्वारा इसे समझाता है—

सबै जगत दरपन कै लेखा । आपुहि दरपन, आपुहि देखा ।[2]

और सैद्धांतिक रूप से भी इस की विवेचना करता है—

परगट गुपुत सकल महँ पूरि रहा सो नावँ ।
जहँ देखौं तहँ ओही, दूसर नहिँ जहँ जावँ ॥[3]

× ×

ना ओहि ठाउँ न ओहि बिनु ठाऊँ । रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ ।[4]

देखने वाले ही जायसी के इस कथन को समझ सकते हैं, दूसरे नहीं—

ना वह मिला न बेहरा ऐस रहा भरिपूरि ।
दीठिवंत कहँ नीयरे, अंध मूरुखहिँ दूरि ॥[5]

वह घट-घट वासी है—

काया मरम गोसाईं (जान) जो घट घट रहै नित ॥[6]

भारतीय अद्वैतवाद की शैली में भी वे बतलाते हैं—

परमहंस तेहि ऊपर देई । सोऽहं सोऽहं सांसै लेई ॥[7]

× ×

'हौं हौं' करब अढारहु खोई । परगट गुपुत रहा भरि सोई ॥
बाहर भीतर सोइ समाना । कौतुक सपना सो निजु जाना ॥
सोइ देखै औ सोई गुनई । सोई सब मधुरी धुनि सुनई ॥
सोई करै कीन्ह जो चहई । सोई जानि बूझि चुप रहई ॥

[1] वही पृष्ठ ३५७
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ११९
[4] वही पृष्ठ ४
[5] वही
[6] वही
[7] वही पृष्ठ ३५२

सोई घट घट होइ रस लेई । सोइ पूछै, सोइ ऊतर देई ॥
सोई साजै अँतरपट, खेलै आपु अकेल ।
वह भूला जग सेंती, जग भूला ओहि खेल ॥[1]

× ×

सोऽहं सोऽहं बसि जो करई । जो बूझै सो धीरज धरई ॥[2]

मलिक मुहम्मद जायसी ने कहीं कहीं पर ब्रह्म के विषय में अंशांशि भाव भी व्यक्त किया है—

जौ उतपति उपराजै चहा । आपनि प्रभुता आपु सौं कहा ॥
रहा जो एक जल गुपुत समुंदा । बरसा सहस अठारह बुंदा ॥[3]
सोई अंस घटै घट मेला । औ सोइ बरन बरन होइ खेला ॥

§ ४—इस ब्रह्म के जायसी ने बहुत से गुण बतलाए हैं—वह सारे संसार का कर्त्ता है—

सुमिरौं आदि एक करतारू । जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू । कीन्हेसि तिहि पिरीत कैलासू ॥[4]

मुसलमान संसार में चार ही तत्व मानते हैं और वे चारों तत्व उसी ने बनाए हैं—

कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल, खेहा ।[5]

धरती, स्वर्ग, पाताल भी उसी के बनाए हुए हैं :

कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू ।[6]

दिन, रात, सूर्य, चंद्र, तारे, धूप, शीत, छाँह, मेघ, बिजली सभी उसी ने बनाए हैं :

कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि, राती । कीन्हेसि नखत, तराइन पाँती ॥

[1] वही पृष्ठ ३६९
[2] वही पृष्ठ ३८२
[3] वही पृष्ठ ३४५
[4] वही पृष्ठ १
[5] वही
[6] वही

कीन्हेसि धूप, सीउ औ छाँहा। कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहि माँहा ॥[1]

नदी, नाले, झरने, जंगल, सातों समुद्र भी उसी के बनाए हुए हैं :

कीन्हेसि नदी, नार औ झरना। कीन्हेसि मगर मच्छ बहु बरना ॥[2]

× ×

कीन्हेसि बनखँड औ जर मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी ॥[3]

× ×

कीन्हेसि सात समुद्र अपारा। कीन्हेसि मेरु खिखिंद पहारा ॥[4]

जंगल में रहने वाले जानवर और आकाश में उड़ने वाले पंछी भी उसी के बनाए हुए हैं:

कीन्हेसि साउज आरन रहईं। कीन्हेसि पंखि उड़हिं जहँ चहईं ॥[5]

नीला-नीला आकाश जिसे मुसलमान कोई तत्व नहीं मानते, भी किसी दूसरे ने नहीं बनाया—

निमिख न लाग करत ओहि, सबै कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक ॥[6]

प्रगट और गुप्त रूप से यह ईश्वर सर्वव्यापी है—

परगट गुपुत सो सरब बिआपी।[7]

यह अलख, अरूप एवं वर्णहीन है—

अलख अरूप अबरन सो कर्ता।[8]

परंतु उसे पहिचानना सरल नहीं—

धरमी चीन्ह, न चीन्है पापी।[9]

उसे किसी ने बनाया नहीं न किसी को उसने उत्पन्न किया—

[1]वही
[2]वही
[3]वही
[4]वही
[5]वही
[6]वही पृष्ठ २
[7]वही पृष्ठ ३
[8]वही
[9]वही

वादी शब्दावली में भी करने लगते थे। शून्यवाद, अद्वैतवाद एवं एकेश्वरवाद का भेद न तो वे व्यक्त ही कर सके और संभवतः वह उन जैसे साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति की समझ के भी परे था। एक विशेषता उन की यह है कि वे ईश्वर का कोई भी नाम नहीं लेते। एक स्थान पर वे उसे अल्ला अवश्य कहते हैं परंतु वह स्थल अपने आप में अकेला है। साधारणतया वे कहीं भी परमात्मा का नाम नहीं लेते। वे उस के रहने के स्थान स्वर्ग को कैलास भी कहते हैं।[1]

§ ६—जीव के विषय में मलिक मुहम्मद जायसी का यही विचार था कि वह ईश्वर का अंश है—

रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। बरसा सहस अठारह बुंदा ॥
सोई अंस घटे घट मेला। ओ सोइ बरन बरन होइ खेला ॥[2]

× ×

बुंदहि समुद समान यह अचरज कासों कहौं।
जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु महँ ॥[3]

यह जीव वास्तव में ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही सारी सृष्टि में बहुत से रूप धारण किए हुए है—

घट घट महँ होइ नित सब ठाऊँ। लाग पुकारै आपन नाऊँ ॥[4]

× ×

दरपन बालक हाथ, मुख देखे दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिए ॥[5]

जिस प्रकार वह आप पुरुष प्रकृतिमय है उसी प्रकार उस ने आदम को भी बनाया—

[1]कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू। वही पृष्ठ १
[2]वही पृष्ठ ३४५
[3]वही पृष्ठ ३४८
[4]वही पृष्ठ ३७३
[5]वही पृष्ठ ३७६

खा—खेलार जस है दुइ करा। उहै रूप आदम अवतरा ॥[१]

पहले उस ने मुहम्मद को बनाया—

पहले रचा मुहम्मद नाऊँ।[२]

× ×

कीन्हेसि पुरुप एक निरमरा। नाउँ मुहम्मद पूनौ-करा ॥[३]

फिर सारा संसार उसी के लिए बनाया—

प्रथम जोति बिधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी ॥[४]

§ ७—यह संसार वास्तव में ईश्वर का खेल है—

आदिहु तें जो आदि गुसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाईं ॥

जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा ॥[५]

× ×

अपने कौतुक लागि उपजाएन्ह बहु भाँति कै।

चीन्ह लेहु सो जागि, मुहम्मद सोइ न खोइए ॥[६]

परंतु यह संसार नश्वर है—

सबै नास्ति वह अहथिर।[७]

× ×

यह संसार झूठ, थिर नाहीं।[८]

यह संसार पानी के एक बबूले के समान है—

पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ।[९]

एकहि आवत देखिए, एक है जात बिलाइ ॥[१०]

यह सारा संसार जैसा है वैसी ही यह हमारी काया है—

जैसी अहै पिरथिमी सिगरी तैसिहि जानहु काया-नगरी ।[1]

कवि इस के विस्तार भी देता है—

गा—गौरहु अब सुनहु गियानी । कहौं ग्यान संसार बखानी ॥
नासिक पुल सरात पथ चला । तेहिकर भौंहें हैं दुइ पला ॥
चांद सुरुज दूनौं सुर चलहीं । सेत ललार नखत झलमलहीं ॥
जागत दिन, निसि सोवत माँझा । हरष भोर, बिसमय होइ साँझा ॥
सुख बैकुण्ठ भुगुति औ भोगू । दुख है नरक, जो उपजै रोगू ॥
बरखा रुदन, गरज अति कोहू । बिजुरी हँसी, हिवंचल छोहू ॥
घरी पहर बेहर हर सांसा । बीतै छओ ऋतु बारह मासा ॥
जुग जुग बीतै पलहि पल अवधि घटति निति जाइ ।
मीचु नियर जब आवै जानहुँ परलय आइ ॥[2]

कवि एक और स्थान पर कहता है—

धा—धट जगत बराबर जाना । जेहि महँ धरती सरग समाना ॥
माथ ऊँच मक्का बन ठाऊँ । हिया मदीना नबी क नाऊँ ॥
स्रवन, आँखि, नाक मुख चारी । चारिहु सेवक लेहु बिचारी ॥
भावैं चारि फिरिस्ते जानहु । भावैं चारि यार पहिचानहु ॥
भावैं चारिहु मुरसिद कहऊ । भावैं चारि किताबैं पढ़ऊ ॥
भावैं चारि इमाम जे आगे । भावैं चारि खंभ जे लागे ॥
भावैं चारिहु जुग मति-पूरी । भावैं आगि, बाउ, जल, धूरी ॥[3]

एक दूसरे स्थान पर भी कवि यह कहता है कि सातों द्वीपों और [illegible], वह सब इस शरीर में है—

सातौं दीप, नवौं खँड, आठौं दिसा जो आहिं ।
जो बरम्हंड सो पिंड है, हेरत अंत न जाहिं ॥[4]

[illegible] कहता है कि यह भूगोल ही नहीं वरन्

[1] [illegible]
[2] [illegible]
[3] [illegible]
[4] [illegible]

चौदहों लोक शरीर में हैं—

चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं ॥[1]

पद्मावती के सांकेतिक कोष को भी वह मनुष्य के शरीर पर ही घटित करने का प्रयत्न करता है—

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा? ॥
नागमती यह दुनिया-धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा ॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू ॥
प्रेम कथा एहि भांति बिचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु ॥[2]

परंतु शरीर चार तत्वों से बना है—

पहिलेइ रचे चारि अदवायक। भए सब अदवैयन के नायक ॥
भइ आयसु चारिहु के नाऊँ। चारि वस्तु मेरवहु एक ठाऊँ ॥
तिन्ह चारिहु थें मँदिर सँवारा। पांचभूत तेहि महँ पैसारा ॥[3]

§ ८—पता नहीं कवि पंचभूत से क्या समझता है। वैसे कवि माया को भी मानता है। पंचभूत के संचार होते हीं—

आपु आपु महँ अरुझी माया।[4]

कवि ने नारद को शैतान माना है। जहां भी उस ने नारद का संकेत दिया है वहीं पर उसे वह शैतान मानता है। वह ईश्वर का परम प्रिय सेवक है। ईश्वर ने उसे गुप्त स्थान दिखाया है—

नारद कहँ बिधि गुपुत देखावा।[5]

और ईश्वर ने उस से कहा भी कि तू मेरा सेवक है और अन्य सेवकों से भिन्न है—

[1] वही पृष्ठ ३४१
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ३४६
[4] वही
[5] वही पृष्ठ ३४७

तू सेवक है सोर निनारा । दसई पँवरि होसि रखवारा ॥[1]

और तब नारद ने धर्मी लोगों को अधर्म के मार्ग की ओर खींच कर पापी बनाना प्रारंभ कर दिया —

धरमिहि धरि पापी जेइ कीन्हा ।[2]

आदम हौआ के स्वर्ग से निकाले जाने का कारण भी नारद है—

आदम हौवा कहँ सृजा लेइ घाला कविलास ।
पुनि तहँवाँ ते काढ़ा नारद के बिसवास ॥[3]

यह नारद बराबर अपना काम करता रहता है और मनुष्य को विषय-वासना में लिप्त किए रहता है—

नाभि-कँवल तर नारद लिए पाँच कोटवार ।
नवौ दुआरि फिरै निति दसईं कर रखवार ॥[4]

×   ×

जो— नारद जस पाहरू आया । धारा मेलि फाँद जग लाया ॥
नारद, [illegible] सँचारा । सब अरुझाइ रहा संसारा ॥[5]

परंतु [illegible] । स्वयं विषय-वासना में लीन [illegible] —

[illegible] । [illegible] जाइ नहिं बाहा ॥[6]

[illegible] नारद कुरान को पढ़ने और मानने वालों से बहुत दूर रहता है—

[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] नारद [illegible] । [illegible] पाप, पुनि [illegible] ॥[7]

[illegible] —

ना—नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहे सों मैं हारा॥[1]

इस नारद का कवि ने एक चित्र भी दिया है जिसमें उसे धूर्त के के रूप में चित्रित किया है। वह तरह-तरह के रूप धारण किया करता है—

धूत एक मारत गनि गुना। कपट रूप नारद करि चुना॥
'नांव न साधु' साधि कहवावै। तेहि लगि चलै जो गारी पावै॥
भाव गांठि अस मुख, कर भोंजा। कारिख तेल घालि मुख मोंजा॥
परतहि दीठि छुरत मोहिं लेखे। दिनहि मोंझ अँधियर मुख देखे॥
लीन्हे चंग राति दिन रहा। परपँच कीन्ह लोगन महँ चहई॥
भाइ-बंधु महँ लाइ लावै। आप पूत महँ कहै कहावै॥
मेहरी भेस रैनि कै आवै। तरपड़ कै पूरुख ओनवावै॥
मन मैली कै ठगि ठगै, ठगै न पायौ काहु।
बरजेउ सबहिं 'मुहम्मद', असि जनि तुम पतियाहु॥[2]

जायसी उसे तरह-तरह के अपशब्द कहते हैं—

है नरकी औ पापी, टेढ़ बदन औ आंखि।
चीन्हत उहै 'मुहम्मद', झूठ भरी सब साखि॥[3]

§९—इसी माया से मनुष्य को बचना है। जायसी आवागमन में विश्वास नहीं करते। परंतु माया में विश्वास करते हैं और आखिरी दिन होने वाले जलसे में अपने को छोटा नहीं करना चाहते। वे इस भवसागर के पार होना चाहते हैं। वे कहते हैं—

कहाँ ते उपने आइ सुधि बुधि हिरदय उपजिए।
पुनि कहँ जाहिं समाइ मुहमद सो खँड खोजिए॥[4]

योगियों की शब्दावली में वे अपना लक्ष्य बतलाते हैं—

सातवँ सोम कपार महँ, कहा सो दसवँ दुवार।

जो वह पँवरि उघारे सो बड़ सिद्ध अपार ॥[1]

दार्शनिक की-सी शब्दावली में वे कहते हैं—

एकहि तें दुइ होइ, दुइ सौ राज न चलि सकै ।
बीचु ते आपुहि खोइ, मुहमद एकै होइ रहु ॥[2]

एक से दो हो गए और अब दो से एक हो जाना चाहिए ।

दुहूँ रूप है एक अकेला । औ अनबन परकार सो खेला ॥
औ भा चहै दुवौ मिलि एका । को सिख देइ काहि, को टेका ॥
कैसे आपु बीच सो मेटै । कैसे आप हिराइ सो भेंटै ॥[3]

दोनों रूपों में वास्तव में एक ही है । वे दोनों अब फिर एक होना चाहते हैं । यही हमारे जीवन का लक्ष्य है ।

§ १०—जायसी का यही लक्ष्य है । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जायसी ने एक रास्ता दिया है जिसके तीन अङ्ग हैं—

१. प्रेम पंथ
२. हठयोग
३. इस्लाम

प्रेम पंथ के दो पहलू हैं :—

१. आध्यात्मिक प्रेम
२. लौकिक प्रेम

§ ११—आध्यात्मिक प्रेम के विषय में कवि ने विशेष नहीं कहा । अखरावट में प्रेम के जो गुण गाए गए हैं वही आध्यात्मिक प्रेम की व्याख्या है । पद्मावती में जो प्रेम की व्याख्या की गई है उसमें जहाँ पर शृंगार पक्ष की अवमानना कर सूक्ष्मता की ओर कवि की लेखनी चल देती है वहाँ ऐसा भास होने लगता है कि मानो कवि आध्यात्मिक

[1] वही पृष्ठ ३५७

[2] वही पृष्ठ ३५५

[3] वही पृष्ठ ३७६

स की कठिनाइयाँ हमें दे रहा है। पद्मावती के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार हैं—

१. पद्मावती रूपक है[1]

२. पद्मावती समासोक्ति है[2]

१ व २—रूपक और समासोक्ति शब्दों से [illegible] भिन्न भिन्न अर्थ लिए जा सकते हैं।

१. इसलिए ग्रन्थ के अन्त में स्वयं एक आध्यात्मिक कोष दिया है जो पद्मावती को आध्यात्मिक कह देता है।

२. इसलिए वर्णन भी इसी ओर संकेत करते हैं।

इन दोनों तर्कों का समाधान सरलता से किया जा सकता है—

१. कवि ने निम्न लिखित कोष दिया है—

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जो पंथ दिखावा। बिनु गुरु को निरगुन पावा॥
नागमती यहि दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न यहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा यहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥[3]

इस कोष को देने के साथ-साथ कवि ने हमें यह भी बतलाया है कि पद्मावती के अर्थ को बड़े-बड़े पंडित भी नहीं समझ पाए—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥[4]

अखरावट में भी कवि ने कहा है—

कहा मुहम्मद प्रेम-कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी॥[5]

और साथ ही साथ उपदेश भी दिया है—

[1]डा० सूर्यकांत शास्त्री-पद्मावति भाग १ (१९३४) विषय पृष्ठ २

[2]रामचन्द्र शुक्ल-जा०ग्रं० (भूमिका) पृष्ठ ७५ [3]वही पृष्ठ ३४१

[4]वही

[5]जा० ग्रं० पृष्ठ ३७६

कहे प्रेम कै बरनि कहानी । जो बूझै सो सिद्ध गियानी ।[1]

कवि की ये उक्तियाँ पद्मावती की अन्योक्ति की ओर संकेत कर रहा है ।

इस कोष के संकेतों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—

पद्मावती = बुद्धि
रत्नसेन = मन
सिंहल = हृदय
चित्तौड़ = तन
नागमती = दुनिया धंधा
अलाउद्दीन = माया
राघवचेतन = शैतान
हीरामन = गुरु

इस संकेत कोष के शब्दों को थोड़ा-सा परिवर्तित करते हुए इस प्रकार रखा जा सकता है—

पद्मावती = बुद्धि
रत्नसेन = मन
सिंहल = मन
चित्तौड़ = तन
नागमती = माया
अलाउद्दीन = माया
राघवचेतन = माया
हीरामन = गुरु

इस प्रकार मन के दो प्रतीक हैं—

(१) रत्नसेन
(२) सिंहल

[1] वही पृष्ठ ३८२

माया के तीन प्रतीक हैं—

(१) नागमती
(२) अलाउद्दीन
(३) राघवचेतन

रत्नसेन और सिंहल मन के प्रतीक क्यों हैं, यह समझ में नहीं आता। मन दो प्रकार का कवि ने कैसे मान लिया यह भी समझ में नहीं आता है। इसी प्रकार माया के ये तीन प्रतीक क्या हैं यह भी स्पष्ट में नहीं है। दार्शनिक दृष्टिकोण से माया दो प्रकार[1] की तो मानी अवश्य गई है परन्तु तीन प्रकार की माया हमें कहीं पर नहीं मिलती। यह समस्या इस कोष को पढ़कर अपने उलझे हुए रूप में हमारे सामने उठ खड़ी होती है। यदि इस समस्या को भूलकर एक दूसरी दृष्टि से कोष की विवेचना करें तो भी यह समझ में नहीं आता कि मन (रत्नसेन) तथा बुद्धि (पद्मावती) के समन्वय हो जाने पर माया (राघवचेतन तथा अलाउद्दीन) कैसे उन में विच्छेद कराते हैं। यदि कवि का यह विश्वास है कि यह माया उन दोनों का विच्छेद नहीं करता था तो उसे चाहिए था कि वह कथा को दो-चार पृष्ठ आगे बढ़ाकर स्वर्ग का एक दृश्य देता जहाँ पर रत्नसेन एवं पद्मावती मिलते हुए दिखाई पड़ते। दूसरी बात यह है कि मन और बुद्धि के समन्वय हो जाने पर माया के एक प्रतीक से मन कहता है—

नागमती तू पहिल बियाही। कठिन बिछोह दहै जनु दाही॥[2]

उस का यह कथन कहाँ तक उपयुक्त है। यदि पद्मावती बुद्धि की प्रतीक है और नागमती माया की तो कमलसेन और नागसेन में वर्ण रंग के अंतर के अतिरिक्त और कोई अंतर क्यों नहीं है? नागमती और पद्मावती के विवाह होने पर रत्नसेन दोनों से समान व्यवहार क्यों करता है? दोनों एक साथ ही चिता पर बैठकर क्यों भस्म होती हैं? नाग-

[1] विद्या तथा अविद्या
[2] जा० ग्रं० पृष्ठ २१७

मती के जलने से स्वर्ग रतनार[1] न होकर काला क्यों नहीं हो जाता ? इसी प्रकार के दर्जनों प्रश्न हमारे मन में उठ पड़ते हैं जिन का कोई भी समाधान नहीं मिलता। और हम को दो बातों में से एक माननी पड़ती है।

१—यह कोप एकदम ग़लत है। या तो इसे किसी ने बाद में जोड़ दिया है[2] या कवि ने अपनी लौकिकता को छिपाने के लिए यह एक जामा अपने काव्य को पहिनाया है जिस से साधारण व्यक्ति उस काव्य की आध्यात्मिकता में विश्वास रखे।

२—यह कोप अपना कोई दूसरा अर्थ रखता है जो जायसी के किसी दूसरे धार्मिक विश्वास की ओर संकेत करता है।

प्रस्तुत लेखक दूसरे मत को स्वीकार करता है। इस की विवेचना पीछे के पृष्ठों में हो चुकी है।[3] यहां पर इतना कहना पर्याप्त है कि कवि ने सारे कथानक को शरीर के अंदर ही घटित किया है जिस में कवि असफल है। असफल होने के दो कारण हैं। पहला तो यह कि कवि ने यह व्याख्या काव्य लिखने के बाद में की है। काव्य रचना प्रारम्भ करते समय उस के मस्तिष्क में कोई ऐसी वस्तु प्रतीत नहीं होती। इस कारण यह काव्य पर लागू नहीं होता। दूसरा कारण यह है कि कवि की बुद्धि ही शायद इतनी अधिक नहीं है कि वह इस को ठीक तरह से घटित कर सके।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह कोप लगभग निरर्थक है और इस का कोई विशेष महत्व नहीं।

एक दूसरा अर्थ भी इस कोप से लिया गया है। विद्वानों ने पता

[1] वही पृष्ठ ३३९

[2] लेखक ने एक हस्तलिखित पोथी ऐसी देखी है जिस में यह अंश नहीं है।

[3] डा० मोहनसिंह भी अपने ग्रंथ गोरखनाथ एण्ड मैडिवल मिस्टिसिज़्म (१९३७) पृष्ठ १७ पर यही स्वीकार करते हैं।

[illegible] से इस [illegible] है कि [illegible] पद्मावती को परमात्मा, रत्नसेन को [illegible], [illegible] और अला-उद्दीन को माया [illegible] है। [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] जाता है।

[illegible] है और [illegible] का [illegible] कार्य—इस के विषय में [illegible]—[illegible] करना आदि था। [illegible] अलाउद्दीन एवं राघवचेतन [illegible] आदि था। जब आत्मा और परमात्मा का [illegible] तो क्या [illegible] कि आत्मा दुनिया-धंधा से कैसे कहती है—

नागमती तू पहिलि बियाही। कठिन प्रीति दाहै जस दाही॥[2]

अथवा वह दुनिया-धंधा के संदेश-वाहक से कैसे कह सकती है—

पंखि! आँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहिं।
कोइ न सँदेसी आवहिं तेहिक सँदेस कहाहिं॥[3]

और

चाहौं कतहिँ जाइ उड़ि परौं।[4]

उस की यह स्थिति तो भी कैसे बनती है कि उस का तन तो सिंहल में रहे परंतु मन चित्तौर में—

तन सिंघल मन चितउर बसा।[5]

दूसरी बात यह कि रत्नसेन जो कि आत्मा का प्रतीक है परमात्मा से कैसे कह सकता है—

गंग जमुन तुम नारि दोउ लिखा मुहम्मद जोग।

[1] गणेशप्रसाद द्विवेदी : हिंदी के कवि और काव्य भाग ३ (१९४१) पृष्ठ १

[2] जा० ग्रं० पृष्ठ २१७

[3] वही पृष्ठ १८४

[4] वही

[5] वही पृष्ठ १८७

(ख) पद्मावती के जन्म का वर्णन[1]

(ग) रत्नसेन की मूर्च्छितावस्था का वर्णन[2]

ये चार वर्णन प्रमुख हैं।

३. कथोपकथन—(क) प्रेम खंड के संवाद[3]

(ख) सात समुद्र खंड में राजा तथा सुवा संवाद[4]

(ग) पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड में पद्मावती तथा सखियों की अंत में बातचीत[5]

इन सारी घटनाओं, वर्णनों तथा कथोपकथनों पर दृष्टि डालने से पहली बात हमें यह पता चलती है कि ये सारे उल्लेख पद्मावती के पूर्वार्द्ध के हैं। इन का कोई भी सबंध उत्तरार्द्ध से नहीं है। पूर्वार्द्ध में भी इन का संबंध ग्यारहवें खण्ड से विशेष है। सात समुद्र खंड तथा पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड के बहुत छोटे-छोटे अंश इस प्रकार के हैं।

रत्नसेन पद्मावती भेंट खंड में जो पद्मावती का कथन है उस का लौकिक अर्थ ऐसा है जो उस की अलौकिता को अनावश्यक करार दे देता है। सात समुद्र खंड में यह संदेह उठता है कि कहीं इसमें सूफियों के सात जंगल तो नहीं व्यंजित हो रहे। दोनों ओर सात की संख्या संदेह को और भी दृढ़ करती है। परंतु सात समुद्र तो परंपरागत वस्तु हैं। पद्मावती सात समुद्र पार की थी यह तो लोक-कथाओं में प्रचलित है। और लौकिक प्रेम कथाओं में इस प्रकार के वर्णन करना तो सभी जगह समान है। जायसी ने भी वहां पर कष्टों का ही वर्णन किया है। इस कारण वह आवश्यक रूप से आध्यात्मिकता नहीं ला देता।

इस प्रकार पद्मावती के पहले ग्यारहवें खंड तक ही यह प्रतीत

[1] वही पृष्ठ २३

[2] वही पृष्ठ ४७-५५

[3] वही पृष्ठ [illegible]

[4] वही पृष्ठ ५७-५९

[5] वही पृष्ठ ७४-७५

होता है कि मानो यह कथा अपनी आध्यात्मिक समासोक्ति रखती है।

संक्षेप में हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ग्यारहवें खंड तक तो कहीं कहीं प्रेम की अनूभूति दिव्य-सी है परंतु उस के पश्चात वह लौकिकता की ओर झुक चली है। और पूर्वार्द्ध के पश्चात वह एक-मात्र लौकिक रह गई है। यदि रहस्यवाद जैसी किसी वस्तु का कुछ भी आभास है तो वह पूर्वार्द्ध के पहले ग्यारह खंडों में है शेष में नहीं।

§ १४—ऐसा प्रतीत होता है मानों कवि ने इस कथा का प्रारंभ तो एक रहस्यवादी अन्योक्ति या समासोक्ति की भावना से किया था परंतु कवि उस का निर्वाह नहीं कर सका। धीरे धीरे वह अन्योक्ति की भावना उस की मुट्ठी से छूटने लगी और उत्तरार्द्ध में बिलकुल निकल गई है।

§ १५—यहां पर प्रश्न उठता है कि तो क्या हम पद्मावती को रहस्यवादी काव्य कहेंगे ?

इस का संक्षिप्त उत्तर यह है कि पद्मावती में प्रेम खंड रहस्यवाद का सर्व श्रेष्ठ अंश है। नख-शिख वर्णन तथा अन्य वर्णन रहस्यवादी प्रवृत्तियोंमय हैं और शेष अंश में रहस्यवाद ढूँढ़ना व्यर्थ है। वे एक मात्र लौकिक अंश हैं। परंतु प्रेम खण्ड में रहस्यवाद का जो अंश आया है वह अपने में महान है। अनुभूति की तीव्रता में कवि कहता है—

जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौ सोइ उठि जागा ॥[1]

और रहस्यवादी साधक की भांति रो उठता है। जागना उसके लिए दुःखकारी वस्तु है—

आवत जग बालक जस रोआ। उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोआ' ॥[2]

यहां पर बालक शब्द रहस्यवादी अनुभूति की तीव्रता का परिचायक है। आगे की भावनाएं भी ऐसी ही हैं—

[1] वही पृष्ठ ५६ [2] वही पृष्ठ ५७

हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ ॥
केइ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा ॥
सोवत रहा जहाँ सुख साखा। कस न तहाँ सोवत विधि राखा ॥[१]

× ×

अहुठ हाथ तन सरवर हिया कँवल तेहि माँह।
नैनहिं जानहु नीयरे कर पहुँचत औगाह ॥[२]

तोता समझाता है कि प्रेम पंथ पर चलना सब के वश की बात नहीं है। योगी, यती और सन्यासी ही उस पर चल पाते हैं—

ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती और सन्यासी ॥[३]

वह आगे कहता है। कि तू तो राजा है विलास-वासनाओं में अभी तू लिप्त है, तू उस पथ पर कैसे चलेगा—

तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरे घरहि माँझ दस पंथा ॥
काम, क्रोध, तिसना, मद, माया। पाँचौ चोर न छाँड़हि काया ॥
नवौ सेंध तिन्ह कै दिठियारा। घर मूसहिं निसि, की उजियारा ॥
अबहू जागु अजाना, होत आव निसि भोर।
तब किछु हाथ न लागहिं मूस जाहिं जब चोर ॥[४]

उस के पश्चात राजा का चित्र देखिए। एक रहस्यवादी साधक की भांति ही रत्नसेन की भी दशा हो जाती है—

सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार पेम चित लागा ॥
नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूँगा। जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा ॥
हिय कै जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधियारा बूझा ॥
उलटि दीठ माया सो रूठी। पलटि न फिरी जानि कै झूठी ॥
जौ पै नाहीं अहथिर दसा। जग उजार का कीजिय बसा ॥
गुरू बिरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला ॥

[१] वही
[२] वही
[३] वही पृष्ठ ५८
[४] वही

कवल तर फलित भँवर भी जगा । औरु होहिं जेहि कारन रहा ॥[1]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इसके पश्चात् [illegible] जागने और [illegible] —

रतनसेन सो कंत सुजानू । षटरस पंडित सोरह बानू ॥
अस होइ मिले सुरुज औ ओरी । जैसे बिछुरी सारस जोरी ॥
इहाँ नारि सुनी एक बाता । होइ सुनि पंथ भावहि पछितासा ॥
पिय धनि गही दीन्हि गलबाहीं । धनि बिछुरी लागी उर माहीं ॥
ते पुनि रस रस बेलि लगाहीं । चोवा मागे अरगजा होहीं ॥
धनि सौं मान मान सौं बाँधा । पुरुष पुरुष में गहै बिलि बाँधा ॥[2]

यह काम शास्त्र के 'ऋतुमान' को भी नहीं भूला है । वह स्पष्ट कहता है—

चतुर नारि चित अधिक चिहूँटी । जहाँ प्रेम बाढ़ै किमि छूटी ॥
कुरला काम केलि मनुहारी । कुरला जेहि नहिं सो न सुनारी ॥[3]

× ×

और 'सुरत' का व्यंजनात्मक वर्णन करता है—

भौंह भौंह कै तानहु लहई । भौंह थाकि धनि कोमल भई ॥
दारिउँ, दाख, बेल रस चाखा । पिय के खेल धनि जीवन राखा ॥
भएउ बसंत कली मुख खोली । बैन सुहावन कोकिल बोली ॥[4]

दारिउँ दाख, बेल—दाँत, अधर और उरोज के व्यंजक हैं । इसी प्रकार बसंत होना, कली का मुख खोलना और कोकिल का बोलना भी अपना दूसरा अर्थ रखते हैं ।

कवि की लेखनी यहाँ पर भी रुक नहीं जाती । वह बिना संकोच

के लिखती जाती है—

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधांसि बिरह संग्रामा॥
लीन्ह लंक कंचनगढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
औ जोवन मैमंत बिधांसा। बिचला बिरह जीव जो नासा॥
टूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी मांग भंग भए केसा॥
कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी॥
बारी, टांड सलोनी टूटी। बाहूँ कँगन कलाई फूटी॥
चंदन अंग छूट अस भेंटी। बेसरि टूटि तिलक गा मेटी॥[1]

यहाँ पर कवि की सारी आध्यात्मिकता अपने सच्चे स्वरूप को खोल रही है। अब प्रश्न यह उठता है कि हम सम्पूर्ण काव्य पद्मावती को क्या कहें?

सागर की एक दो लहरें पूरे सागर का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। जायसी की पद्मावती को हम एक लौकिक प्रेम-कथा सरलता से मान सकते हैं।

§ १६—परंतु यह कहकर कि जायसी ने लौकिक प्रेम का चित्रण किया है, पद्मावती का महत्व कम नहीं किया जा सकता। जायसी ने प्रेम पंथ की जो रूप-रेखा हमारे सामने दी है, प्रेम के जो गुण गाए हैं वे जायसी के लिए हमारे हृदय में एक बड़ा स्थान बना देते हैं। जायसी का प्रेम एकमात्र वासना नहीं है, भावुकता तथा भावनात्मकता भी है। यों तो बादल ने अपनी पत्नी से कहा था—

तिरिया भूमि खड्ग की चेरी।[2]

परंतु जायसी इस उक्ति में विश्वास नहीं रखते। वे नारी को प्यार करने की वस्तु मानते हैं। अलाउद्दीन ने तलवार निकाल कर पद्मावती पर अधिकार करना चाहा था और उस के हाथ में राख आई—

[1] वही   [2] वही पृष्ठ ३२२

[illegible] सोरह [illegible] । [illegible] विरहिनी [illegible] ॥[1]

रत्नसेन में भी पद्मावती [illegible] था । उस में भी [illegible] नहीं [illegible] । उस के [illegible] था —

पदमावति राजा कै बारी । [illegible] लागि सिंगारी ॥
ससिहर [illegible] ॥[2]

वह प्रेम जिसके लिए अद्भुत [illegible], [illegible], [illegible], मृत्यु, [illegible], [illegible] सात समुद्र पार कर सिंहल देश में [illegible], [illegible] आध्यात्मिक हो [illegible] लौकिक [illegible] है । [illegible] लौकिकता पर हमें [illegible] है । [illegible] का इतना [illegible] संसार में [illegible] दुर्लभ है । [illegible] के लिये 'प्रेम' [illegible] पर्याप्त था । वे शायद लौकिकता और अलौकिकता को सोचते भी नहीं थे । इस अत्यंत गंभीर प्रेम के लिए ही संभवतः उन्हों ने पद्मावती के प्रारंभ में पद्मावती को इतना अधिक ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है कि पद्मावती का व्यक्तित्व हमें आध्यात्मिक प्रतीत होने लगता है । वास्तव में हमने जो विचार इस संबंध में प्रकट किए हैं वे एक संभावना मात्र हैं । अधिक [illegible] प्रतीत होता है कि जायसी लौकिक और अलौकिकता को सोचते नहीं थे । वे तो यही कहते थे—

रतन जाइ भरि पूरि [illegible] के संग ।
प्रेम [illegible] तेहि ऊपर [illegible] ॥[3]

कवि प्रेम की महानता में यह भी कहता है कि—

ध्रुव तें ऊँच पेम ध्रुव ऊआ ।[4]

और

[1] वही पृष्ठ १४०
[2] वही पृष्ठ १०६-१०७
[3] वही पृष्ठ ३४६
[4] वही पृष्ठ ५७

पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा।[1]

प्रेम से ही तो शैतान भी हारता है। जायसी ने अपने इस विश्वास को कितनी दृढ़ता के साथ अभिव्यक्त किया है—

ना—नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहे सौं मैं हारा॥
प्रेम तंतु नित ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई॥[2]

एक दूसरे लुहार और घन-दर्पण के रूपक में कवि कहता है—

कया ताइ कै खरतर करई। प्रेम कै सँड़सी पोढ़ि कै धरई॥[3]

इस प्रकार जायसी का दृढ़ विश्वास प्रेम में था। इस प्रेम को उन्हों ने एक पंथ का रूप देने का भी प्रयत्न किया है। पद्मावती में उस की रूप-रेखा हमें मिलती है। प्रेम पंथ पर चलने वाले के लिए आवश्यक है कि वह उस पंथ पर सिर के बल चलने को तैयार रहे—

प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढ़ा॥[4]

प्रेम की चिनगारी पहले गुरु चेले के हृदय में डालता है—

गुरू बिरह चिनगी जो मेला।[5]

परंतु सब के लिए यह चिनगारी व्यर्थ है। जो इस चिनगारी की आग को अपने अंदर सुलगा ले वही वास्तव में इस पथ का पथिक है—

जो सुलगाइ लेइ सो चेला।[6]

और फिर एक बार यदि यह प्रेम की पीर उपज जाए तो फिर उसे उपदेश देना बिलकुल व्यर्थ है—

उपजी प्रेम पीर जेहि आई। परबोधत होइ अधिक सो आई॥[7]

एक बार इस पथ पर आकर मनुष्य संसार की वासनाओं तथा माया

१ वहीं
२ वहीं पृष्ठ ३७४
३ वहीं पृष्ठ ३७२
४ वहीं पृष्ठ ५८
५ वहीं पृष्ठ ५९
६ वहीं
७ वहीं

घा—घर जगत बराबर जाना ।[1]

× ×

चौदह भुवन जो तर उपराहीं । ते सब मानुस के घट माहीं[2]

पद्मावती में तो कवि भेष पर ही ज़ोर देता है। योग की आंतरिक क्रियाओं का ज्ञान उसे नहीं प्रतीत होता—कवि हमें यही बतलाना चाहता है कि राजा ने किंगरी ले ली और शरीर पर भस्म लगा ली। मेखला, सिंघी, चक्र, धँधारी, जोगवाट, रुद्राक्ष, अधारी, कंथा, दण्ड, मुद्रा, जपमाला, उदपान, बघ-छाला, पाँवरी, छाता और खप्पर धारण कर लिए और चल पड़ा। उस के हृदय पक्ष का समुचित वर्णन उस ने नहीं दिया—

तजा राज राजा भा जोगी । औ किंगरी कर गहे बियोगी ॥
तन बिसँभर मन बाउर लटा । अरुझा पेम परी सिर जटा ॥
मेखल सिंघी चक्र धँधारी । जोगवाट रुदराछ अधारी ॥
कंथा पहिरि दण्ड कर गहा । सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा ॥
मुद्रा स्रवन कंठ जयमाला । कर उदपान कांध बघछाला ॥
पांवरि पांव, दीन्ह सिर छाता । खप्पर लीन्ह भेस करि राता ॥
चला भुगुति मांगे कहँ साधि कया तप जोग ।
सिद्ध होइ पदमावति जेहि कर हिए बियोग ॥[3]

परन्तु अखरावट में कवि कुछ अधिक निश्चित-सा हो चला है। सातों खण्डों का वह वर्णन कर रहा है—

टा—टुक झांकहु सातौ खण्डा । खण्डै खण्ड लखहु बरम्हण्डा ॥
पहिल खंड जो सनीचर नाऊँ । लखि न अँटकु पौरी महँ ठाऊं ॥
दूसर खंड बृहस्पति तहवां । कालदुवार भोग घर तहवां ॥

[1] वही पृष्ठ २५०   [2] वही पृष्ठ २४१

[3] वही पृष्ठ ६०

× ×

… तन नाहु नाहिं के मांगा । सो पै करै बयहि पग लागा ।[1]

[illegible] में भी [illegible] की चर्चा करता है और सुषुम्ना, पिंगला [illegible] है —

पाँचहु [illegible] मोजन करहु [illegible] ।
[illegible] ॥
एहि विधि [illegible] काम, क्रोध, तिस्ना, मद, माया ॥
[illegible] ॥[2]

[illegible] है —

[illegible] ।
[illegible] ॥[3]

[illegible]
[illegible] है —

[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ऊपर [illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥[4]

कवि अनहद और शून्य [illegible] की भी चर्चा करता है —

अनहद [illegible] ।[5]

१ वही

२ वही पृष्ठ ३७०

३ वही

४ वही पृष्ठ ३७२

५ वही पृष्ठ ३७२

४. इस्लामी धार्मिक विश्वास—कयामत दिन आदि की पौराणिक कथाएँ

५. नमाज़

६. मूर्ति पूजा खंडन

७. रोज़े [illegible]

८. इस्लामी संस्कृति—[illegible] आदि

इस्लामी खुदा एक है, दो नहीं। कवि ने इस को माना है और इसी पर ज़ोर दिया है। इसकी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। मुहम्मद साहब के विषय में कवि कहता है—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनौ करा॥[1]

कवि यह मानता है कि मुहम्मद साहब को परमेश्वर ने सब से पहले ही प्रधान के रूप में बनाया था—

प्रथम जोति विधि ताकर साजी।[2]

और उसी की प्रीति से यह सारी सृष्टि बनाई—

औ तेहि प्रीति सिरिजि उपराजी॥[3]

मुहम्मद साहब के हाथों में इस्लाम का दीपक था—

दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा।[4]

और उस ने सारे संसार को सच्चा प्रकाश दिखलाया—

भा निरमल जग मारग चीन्हा।[5]

यदि मुहम्मद साहब न होते तो सारा संसार अँधेरे में ही भटकता रहता—

जौ न होत अस पुरुष उजियारा। सूझि न परत पंथ अँधियारा।[6]

यों तो संसार में बहुत से धर्म हैं—

१ वही पृष्ठ ५
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही

पुनि उसमान पँडित बड़ गुनी । लिखा पुरान जो आयत सुनी ॥
चौथे अलीसिंह बरियारू । सौंह न कोऊ रहा जुझारू ॥[1]

क़ुरान पर भी कवि की दृढ़ अवस्था है। कवि उसे क़ुरान न कह कर पुरान कहता है और बतलाता है कि वह दोनों जगतों में प्रमाण ग्रंथ है—

लिखि पुरान विधि पठवा सांचा । भा परवांन दुहूँ जग बांचा ॥[2]

क़ुरान की बड़ी महिमा है। उसे सुनते ही माया के प्रभाव से मनुष्य मुक्त हो जाता है और उसे सच्चा रास्ता दिखलाई पड़ने लगता है—

सुनत ताहि नारद उठि भागे । छूटे पाप पुन्य सुनि लागे ॥[3]

× ×

जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ ।
और जो भूले आवत सो सुनि लागे पंथ ॥[4]

क़ुरान से ही परमेश्वर को पहिचानना चाहिए—

एहि विधि चीन्हहु करहु गियानू । जस पुरान महँ लिखा बखानू ॥[5]

कवि का विश्वास आख़िरी दिन पर भी है। सारा आख़िरी कलाम इस बात का प्रमाण है।

नमाज़ तो इस्लाम का खंभा है। कवि इसी कारण विश्वास के स्वर में कहता है—

ना-नमाज़ है दीन क थूनी ॥[6]

इस की महत्ता भी विशेष है। नमाज़ इस्लाम के बड़े बाह्याचारों में है। इसी कारण जायसी कहते हैं—

[1] वही पृष्ठ ५-६
[2] वही पृष्ठ ३६२
[3] वही
[4] वही पृष्ठ ६
[5] वही पृष्ठ ४
[6] वही पृष्ठ ३६३

पढ़ै नमाज़ सोइ बड़गूनी ॥[1]

× ×

साईं केरा बार जो थिर देखै औ सुनै।
नइ नइ करै जोहार मुहम्मद निति उठि पांच बेर ॥[2]

मूर्ति पूजा का खंडन लेखक जम कर करता है—

पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सो ऐसे बूड़ै मझधारा ॥[3]

और

पाहन सेवा कहां पसीजा। जनम न ओद होइ जो भीजा ॥[4]

इसलिए

बाउर सोइ जो पाहन पूजा। सकत को भार लेइ सिर दूजा ॥[5]

संगीत का विरोध उस ने बड़े ही सम्हाल कर किया है। कवि वहाँ पर अनहद नाद की ओर हमें उन्मुख करता है—

नाद हिये मद उपनै काया। जहँ मद तहाँ पैँड़ नहिं छाया ॥[6]

× ×

जोगी होइ नाद जो सुना। जेहि सुन काम जरै चौगुना ॥[7]

× ×

जस मद पिए घूम कोइ नाद सुनै पै घूम।
तेहितें बरजे नीक है चढ़ै रहसि के दूम ॥[8]

हिन्दुओं के ज्योतिष शास्त्र में विश्वास को भी कवि सही नहीं मानता। रत्नसेन जो कि पंडित की बात न मान कर ऐसे दिन सिंहल जाता है जिस दिन ज्योतिष के अनुसार उसे नहीं जाना चाहिए, तो वह ठीक पहुँचता है और सफल होता है परन्तु जब वह सिंहल से

[1] वही
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ९९
[4] वही
[5] वही
[6] वही पृष्ठ १४२
[7] वही
[8] वही

ज्योतिष के अनुसार शुभ दिन लौटता है तो उसे बड़े से बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं।

इस्लामी पौराणिक व्यक्तियों में भी कवि का विश्वास है। आखिरी कलाम में कई व्यक्तियों के नाम कवि ने लिए हैं। मैकाइल प्रलय के समय पानी बरसाता है। जिब्राइल सब को मारता है। इस के पश्चात मैकाइल फिर चालीस दिनों तक झड़ी लगाए रहता है। इसराफील तुरही बजाता है। अज़राइल सब जीवों को लाता है। ये सारे व्यक्ति कवि के लिए साकार से हैं। आदम हौआ में भी कवि अपना विश्वास रखता है।

इस प्रकार कवि इस्लाम की इन आठ बातों पर दृढ़ आस्था रखता है।

§ १६—संक्षेप में कवि के साधन पथ की यही रूप रेखा है। प्रश्न यह है कि कवि का यह साधन पथ एक है अथवा तीन हैं? ऊपर के विवेचन से तो ऐसा प्रतीत होता है मानों ये साधन पथ तीन हों। परन्तु वास्तव में कवि ने एक ही साधन पथ की ओर संकेत किया है। वह साधन पथ है—सूफी धर्म। हम आगे के पृष्ठों में बतलाएंगे कि मध्य युग में सूफी धर्म की क्या दशा थी और जायसी पर उस का कितना प्रभाव था। यहाँ पर इतना कहना ही पर्याप्त है कि जायसी इस्लाम को मानते हुए हठयोग को प्रश्रय देते थे और हठयोग में 'ध्यान' के स्थान में 'इश्क़' को स्वीकार करते थे जो कि ध्यान का एक विशेष रूप है। और उनका यह 'इश्क' पार्थिव प्रेम ही था।

२—अन्य विचार

§ १—मलिक मुहमद जायसी ने अपने आध्यात्मिक विचारों के अतिरिक्त कुछ और विचार भी दिए हैं। ये विचार प्रायः उपदेश के रूप में हैं। ये दो प्रकार के हैं—

१. निषेधात्मक

२. विधेयात्मक

कवि ने कुछ बातों का तो निषेध किया है और कुछ बातों को करने के लिए कहा है।

§ २—निषेधात्मक बातों में गर्व न करो, लोभ न करो, क्रोध न करो, मांस मत खाओ, बिना पूछे मत बोलो और यदि शत्रु अमृत से ही मर जाता हो तो विष मत दो—प्रमुख हैं।

गर्व के विषय में वह कहता है कि गर्व में किसी को अपने को नहीं भूलना चाहिए—

ऐसे गरब न भूलै कोई[1]

वह लोक कथाओं से उदाहरण देकर अपनी बात की पुष्टि भी करता है कि रावण का पतन गर्व के कारण ही हुआ था—

रावन गरब बिरोधा रामू। ओही गरब भयउ संग्रामू॥[2]

रावण बड़ा वैभव शाली था। उस के दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। उस के बराबर बलशाली दूसरा मिलना कठिन है—

तस रावन अस को बरिबंडा। जेहि दस सीस बीस भुज दंडा॥[3]

सूर्य तो उस की रसोई के चूल्हे जलाता था और समुद्र धोती धोता

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ ४२ [2] वही पृष्ठ १२९

[3] वही

था। वायु उस के घर में झाड़ू देती था। यम को उस ने बंदी बना लिया था—

सूरज जेहि कै तपै रसोई। नितिहि बसंदर धोती धोई॥
सूक सुसंता ससि मसियारा। पौन करै नित बार बोहारा॥
जमहिं लाइ कै पाटी बाँधा। रहा न दूसर सपने काँधा॥
जो अस वज्र टरै नहिं टारा।[1]

लेकिन वह भी नहीं बच सका। दो तपस्वियों ने ही उसे मार डाला—

सोउ मुआ दुइ तपसी मारा।[2]

इस कारण किसी को छोटा जानकर गर्व नहीं करना चाहिए। सारी जीत हार ईश्वर के ही हाथों में है। अगर उस ने छोटे की सहायता की तो वह जीत जायगा—

ओछ जानि कै काहुहि जिनि कोई गरब करेइ।
ओछे पर जो देउ है जीति-पत्र तेहि देइ॥[3]

लेकिन इस गर्व के मूल में दूसरी वस्तु द्रव्य है—

दरब तें गरब[4]

इस कारण लोभ ही पाप का मूल है। जो लोभी होता है उस की सद्वृत्तियाँ मारी जाती हैं—

लोभ पाप कै नदी अंकोरा। सत्त न रहै हाथ जो बोरा॥[5]

उस ने अपने इस विश्वास को और भी स्थलों पर व्यक्त किया है—

लोभ विष मूरी[6]

× ×

१ वही पृष्ठ १३०
२ वही
३ वही
४ वही पृष्ठ १९५
५ वही
६ वही

(२) उपदेश

३४—कवि ने कुछ आधारों पर उपदेश दिए हैं। ये संख्या में कुल तीन हैं—

(१) संसार नश्वर है

(२) जीवन बहुत छोटा है

(३) संसार में अपना कोई नहीं है

३५—संसार की नश्वरता की बात तो कवि अपने काव्य में बार-बार दुहराता है—

सबै नास्ति [1]

× ×

पानी सहँ जस बुल्ला तस यह जग उतराइ।[2]

क्योंकि —

एकहि आवत देखिए एक है जात बिलाइ।[3]

हमारा मानव जीवन भी बहुत ही छोटा है। वह आधे पल के सपने के समान है। इस की आशा ही क्या है—

यहि जीवन की आस का जस सपना पल आधु।[4]

मलिक मुहम्मद जायसी हमें उपमा-रूपक की शैली में समझाते हैं कि जिस प्रकार रहँट में एक टोलनी भरती है और शीघ्र ही रीत जाती है उसी प्रकार जीवन के क्षण भरते-रीतते रहते हैं। कोई क्षण रुकता नहीं है—

मुहमद जीवन जल भरन रहट घरी के रीति।

घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति॥[5]

सिंहल गढ़ का घड़ियाल भी हमें यही समझाता है कि मनुष्य

[1] वही पृष्ठ ३ [3] वही

[2] वही पृष्ठ ३७० [4] वही पृष्ठ ७०

[5] वही पृष्ठ १९

कच्चे घड़े के समान है। वह नाशवान है और इस संसार में स्थिर नहीं रह सकता—

तुम तेहि चाक चढ़े हो कांचे। आएहु रहै न थिर होइ बांचे ॥[1]

और

घरी जो भरी घटी तुम आऊ।[2]

इस नश्वर संसार में नश्वर जीवन पाकर भी मनुष्य एकदम अकेला है। रत्नसेन कहता है कि मैं यहाँ पर चंदन आदि शृंगार में अपने को कैसे खो दूँ ? यहाँ तो मेरे शरीर का अंग-प्रत्यंग ही नहीं वरन् रोम-रोम मेरा शत्रु है—

का भूलौं एहि चंदन चोवा। वैरी जहां अंग कर रोवां ॥[3]

अपना शरीर ही अपना साथ नहीं देता—

हाथ पांव सरवन औ आंखी। ए सब उहां भरहिं मिलि साखी ॥
सूत सूत तन बोलहिं दोखू। कहु कैसे होइहि गति मोखू ॥[4]

और संसार ! संसार तो सपने के समान है। जैसे सपने के टूट जाने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यथार्थ में ये चीज़ें हम ने कभी नहीं देखीं उसी तरह से संसार छूट जाने पर मृत्यु के पश्चात् हम इस संसार को भूल जाते हैं—

या संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानौं नहिं देखा ॥[5]

रत्नसेन की मृत्यु पर कवि कहता है कि कुटुम्ब, घर, धन, द्रव्य और संसार किसी के नहीं होते—

काकर लोग कुटुँब घर बारू। काकर अरथ दरब संसारू[6]

सत्य तो यह है कि मृत्यु की घड़ी आते ही ये पराए हो जाते हैं—

[1] वही
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ६०
[4] वही
[5] वही
[6] वही पृष्ठ २३८

ओही घरी सब भएउ परावा[1]

और अपने प्रियजन ही यह चाहने लगते हैं कि शव जल्दी से जल्दी घर से बाहर निकाल दिया जाए—

अहे जे हितू साथ के नेगी। सबै लाग काढ़ै तेहि बेगी ॥[2]

रत्नसेन ऐसे चल दिया—

हाथ झारि जस चले जुआरी ।[3]

इस लिए कवि यह निष्कर्ष निकालता है कि यह संसार झूठा है, इस से कोई लगाव नहीं रखना चाहिए।

झूठे सब संसार मुहमद न चित्त लाइए ।[4]

§ ६—यहाँ पर गुरु का सहारा पकड़ना चाहिए। तभी उद्धार की सम्भावना है। जायसी स्पष्ट कहते हैं—

बिना गुरू को निरगुन पावा[5]

योगी बिना गोरख को पाए सिद्ध नहीं हो सकता—

बिन गुरु पंथ न पाइए भूलै सो जो मेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौं भेंट ॥[6]

जिस के साथ गुरु है वही संसार में निश्चिंत है और उसी की नाव शीघ्र पार लग जाती है—

मुहमद सोइ निहचिंत पथ जेहि सँग मुरसिद पीर।
जेहिक नाव आनै खेवक बेगि लाग सो तीर ॥[7]

जायसी अपना अनुभव भी बतलाते हैं कि गुरु ने उन के आगे दीपक धर दिया और उस की रोशनी ने उन्हें रास्ता दिखलाया—

लेसा हिए प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमल हीया ॥[8]

रत्नसेन स्वयं बतलाता है कि उस की निर्भयता एवं निश्चिन्तता का यही कारण है कि गुरु उस के साथ ही है—

हमरे दहिन गुरु हैं साथी।[1]

कवि ने नाम स्मरण पर भी ज़ोर दिया है—

जेइ नहिं लीन्ह जनम भरि नाऊँ। ताकहँ दीन्ह नरक महँ ठाऊँ॥[2]

आख़िरी कलाम में परमेश्वर को स्वयं संसार के निवासियों से भारी शिकायत है कि उस का नाम उस के ही बनाए हुए लोग नहीं लेते—

मैं संसार जो सिरजा एता। मोर नांव कोइ नहिं लेता॥[3]

रत्नसेन जब सूली पर चढ़ने जा रहा है तब पार्वती इसी विचार पर शिव से रत्नसेन की सहायता की बात कहती है कि—

मरतहि लीन्ह तुम्हारहि नाऊँ।[4]

दान पर भी कवि ज़ोर देता है। उस की सम्मति में दानी मनुष्य का जीवन धन्य है। दान जप-तप सब से ऊँचा है—

धनि जीवन और ताकर हीया। ऊँच जगत महँ जाकर दीया॥
दिया जो जप तप सब उपराहीं। दिया बराबर जग किछु नाहीं॥
एक दिया ते दसगुन लहा। दिया देखि सब जग मुख चहा॥
दिया करै आगे उजियारा। जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा॥
दिया मँदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा॥[5]

दान लोक-परलोक दोनों में सहाय होता है। यहां का दान दिया उस लोक में मिल जाता है—

दिया सो काम दुवौ जग आवा। इहाँ जो दिया उहाँ सब पावा॥
निरमल पंथ कीन्ह तेइ जेइ रे दिया किछु हाथ।
किछु न कोइ लेइ जाइहि दिया जाइ पै साथ॥[6]

[1] वही पृष्ठ १०९
[2] वही पृष्ठ ५
[3] वही पृष्ठ ३९२
[4] वही पृष्ठ १२८
[5] वही पृष्ठ ६९
[6] वही

कवि उदाहरण भी देता है—

हातिम करन दिया जो सिखा। दिया रहा धर्मन्ह महँ लिखा ॥[1]

लोभ का विरोध करते हुए मलिक मुहम्मद जायसी ने फिर इसी बात का उपदेश दिया है—

दत्त सत्त हैं दूनों भाई।[2]

दान के इस भाई सत्य पर भी कवि ने बड़ा जोर दिया है। वह कहता है कि सारी सृष्टि 'सत्' से बँधी हुई है और स्वयं लक्ष्मी सत् की चेरी है—

बांधी सिहिटि अहै सत केरी। लछिमी अहै सत्य कै चेरी ॥[3]

कवि का विश्वास है कि सत्यनिष्ठ मनुष्य दोनों संसारों में मुक्ति प्राप्त कर लेता है—

दुइ जग तरा सत्य जेइ राखा।[4]

× ×

नवौं खंड नव पौरी औ तहँ वज्र केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ै सत सौं उतरै पार ॥[5]

× ×

सत साथी, सत कर संसारू। सत्त खेइ लेइ लावै पारू ॥[6]

कवि ने इंद्रिय दमन का भी उपदेश दिया है। हीरामन राजा रत्नसेन से कहता है—

तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरे घरहि मांझ दस पंथा ॥
काम, क्रोध तिसना, मद, माया। पांचौ चोर न छांड़हिं काया ॥
नवौं सेंध तिन्ह कै दिठियारा। घर मूसहिं निसि, की उजियारा ॥[7]

१ वही
२ वही पृष्ठ १९५
३ वही पृष्ठ ४४
४ वही
५ वही पृष्ठ १९
६ वही पृष्ठ ७२
७ वही पृष्ठ ५८

दूसरा स्वामिभक्ति का उपदेश कवि ने दिया है। राजा बादशाह युद्ध खण्ड में कवि कहता है—

स्वामि काज जो जूझै सोइ गए मुख रात।
जो भागे सत छाँड़ि कै मसि मुख चढ़ी परात ॥[1]

६७—इस प्रकार जायसी के अन्य उपदेशों का रूप ऐसा उपर्युक्त है। इन देखने से कि जायसी का स्वर सर्वत्र नैतिक है। कहीं पर उन्होंने समाज के विषय में नई स्थापनाएँ नहीं की और न समाज के आदर्शों में कोई परिवर्तन ही किया। वह व्यक्ति के अभ्युत्थान में विश्वास रखते थे।

कवि के इन अन्य उपदेशों और आध्यात्मिक विचारों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है और कहीं पर यह गंध तक नहीं है कि कवि पाठक को किसी विरोधाभास की ओर खींच रहा है।

---

[1] वही पृष्ठ २६४

(३) अर्थ

अथवा

(४) मोक्ष

(उ) अन्य विशेषताएं—

(१) प्रारंभ में आशीर्वाद, नमस्कार और कथा वस्तु का निर्देश होना चाहिए

(२) कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होना चाहिए

(३) एक ही छंद परंतु सर्ग का अंतिम छंद विभिन्न होना चाहिए

(४) एक सर्ग विभिन्न छंद वाला भी होना चाहिए

(५) सर्ग के अंत में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए

(६) काव्य का नाम या तो कवि के नाम पर हो अथवा नायक के नाम पर परंतु अन्य नाम भी संभव हैं

(७) सर्ग की वर्णनीय कथा के आधार पर सर्ग का नाम होना चाहिए

(८) संध्या, सूर्य, चांद, रात, अँधेरा, प्रदोप, दिन, सवेरा, दोपहर, शिकार, पहाड़, मौसम, जंगल, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, शहर, यज्ञ, लड़ाई, सफर, ब्याह, मंत्र, बेटे और अभ्युदय का जहाँ तक हो सके पूरा वर्णन होना चाहिए

§ २—मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावती में इस लक्षणों में से पर्याप्त लक्षण मिल जाते हैं।

कथानक—मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावती का कथानक अर्ध ऐतिहासिक तथा अर्ध लोक प्रचलित था।[1] इस में जायसी को खुद

[1] इस का कथानक रत्नसेन तथा अलाउद्दीन ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं।

[illegible] चित्र ऐसा पड़ता ।
सुन्दर [illegible] की [illegible] । इस चित्र [illegible]
[illegible] [illegible] इस से कोई
[illegible]
[illegible] नहीं [illegible] ।
[illegible] ५८ है [illegible] ८ से
[illegible]

[illegible] है ।

नायक—रूपमती का [illegible] एक [illegible]
है ।[1] इस के [illegible] नायक के समस्त गुण विद्यमान हैं । [illegible] के
गुणों की चर्चा चरित्र-चित्रण वाले परिच्छेद में की जाएगी ।

रस—कथा [illegible] में शृङ्गार रस प्रधान है । अन्य रस भी उस में
विद्यमान हैं । इन की चर्चा रस वाले परिच्छेद में की जाएगी ।

लक्ष्य—रूपमती का [illegible] काम है । [illegible] उस के पाठक
[illegible] धर्म [illegible] भी नहीं है ।
इस से [illegible] पैदा करना नहीं चाहते थे । [illegible]
इस का पाठ पाठक के लिए कोई धार्मिक फल नहीं है । एक प्रेम कथा
को लिखना-पढ़ना प्रमुख रूप से लेखक तथा पाठक दोनों के दृष्टिकोणों
से 'काम' लक्ष्य को लेकर ही हो सकता है । मोक्ष भी उसे हम नहीं
[illegible] आध्यात्मिक पुस्तक नहीं है ।
कह सकते । क्योंकि यह कोई [illegible] आशीर्वाद के वचन तो नहीं

अन्य विशेषताएं—इस के प्रारम्भ में आशीर्वाद [illegible] कथा का भी निर्देश
ईश्वर आदि की स्तुति अवश्य है ।[2] साथ ही साथ कथा का भी निर्देश

१ जंबूदीप [illegible] चित्तउर देसा । चित्रसेन बड़ तहां नरेसा ॥
रतनसेन यह [illegible] बेटा । कुल चौहान जाइ नहि मेटा ॥
आ० ग्रं० पृष्ठ १२०

२ सुमरौं आदि एक करतारू । जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ।
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू । कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा । कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ।
× ×

है।[1] काव्य में कहीं पर तो खलों की निन्दा[2] है और कहीं पर सज्जनों की प्रशंसा[3]। सारे काव्य में दो छंदों का ही प्रयोग हुआ है—एक तो चौपाई का और दूसरा दोहे का। इस में कोई भी खंड विभिन्न छंद वाला नहीं है। खण्ड के अंत में अगले खण्ड की कथा की सूचना भी नहीं है। काव्य का नाम नायिका के नाम पर पद्मावती है। इस में

कीन्हेसि पुरुप एक निरमरा। नांव मुहम्मद पूनो करा।
प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥

× ×

चार मीत जेहि मुहमद ठाऊँ। जिन्हहि दीन्ह जग निरमल नाऊँ॥

× ×

सेरसाह देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू॥

× ×

सैयद असरफ पीर पियारा। जिन मोहि दीन्ह पंथ उजियारा॥

× ×

गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल तिन्हकर खेवा॥

जा० ग्रं० स्तुति खंड पृष्ठ १, ५, ५, ६, ८, ९

[1] सिंघलदीप पदिमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलउदीन देहली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिन्दू तुरकन भई लराई॥
आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै॥
१ वही पृष्ठ ११

[2] वही पृष्ठ ३९५

3 वही

इसी कारण नागमती मान किए बैठी है। नागमती की विरह गाथा पढ़ने वाले को नागमती का यह मनोविज्ञान कुछ विचित्र-सा लगता है परन्तु नारीत्व की मर्यादा एवं सुषमा से भिज्ञ पाठक जानता है कि उस का यह मान कितना स्वाभाविक है। वह रत्नसेन को बुरा-भला नहीं कहती। उस मान में जो भी शब्द उसके मुख से निकलते हैं कैसे संयत एवं मर्मस्पर्शी हैं! धीरा नायिका नागमती कहती है कि प्रियतम तुम तो योगी-वैरागी हो गए और मैं तुम्हारे विरह में जल कर तुम्हारे ही लिए राख बन गई—

तू जोगी होइगा बैरागी। हौं जरि छार भएउ तोहि लागी ॥[1]

कैसे असीम त्याग की भावना इन शब्दों में है। रत्नसेन योगी हो गया है तो उस के विरह में नागमती जल कर राख बन गई है। वह रत्नसेन से अलग नहीं रहना चाहती चाहे रत्नसेन भोगी रहे और चाहे योगी। परन्तु वह नारी भी है। सपत्नी की ईर्ष्या यदि उस में न होती तो वह नारी न रह कर अमानवी बन जाती। जायसी का कोई भी पात्र ऐसा अमानवी नहीं है फिर नागमती ही कैसे हो सकती थी।[2] इसी कारण वह कहती है—

काह हँसौ तुम मोसों किएउ और सौं नेह।
तुम्ह दुख चमकै बीजुरी मोहिं मुख बरसत मेह ॥[3]

यहाँ पर नागमती बिजली और मेह के उपमान रखती है और पद्मावती जो कि व्यंग रूप से बादल है, इन उपमानों में प्राण भर रही है। संयोग माधुरी के बीच सपत्नी का अस्तित्व ही सारे रस को फीका बना देता है। इसी कारण नागमती इस प्रकार के व्यंग रत्नसेन पर कर रही है।

[1] वही पृष्ठ २१७

[2] अमानवी पात्रों की विवेचना के लिए चरित्र चित्रणवाला परिच्छेद देखिए।

[3] वही

परन्तु रत्नसेन चतुर सुजान[१] और नागर[२] है। वह परिस्थिति को बड़े कौशल के साथ सम्भालता है। वह कहता है कि नागमती तू तो पहले ब्याही है—

नागमती तू पहिल बियाही। कठिन बिछोह जरै जनु दाही ॥[३]

वह मीठी भर्त्सना भी करता है कि पत्थर के हृदय वाली स्त्री ही बहुत दिनों के बाद आए प्रिय से नहीं मिलती—

बहुतै दिनन आव जो पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ ॥[४]

वह दृष्टान्त भी देता है—

पाहन लोह पोढ़ जग दोऊ। तेउ मिलहिं जौ होइ बिछोऊ ॥[५]

वह चाटुकारिता भी जानता है और कहता है कि पद्मावती गोरी भली हो, परन्तु काली नागमती ही उसे अधिक भाती है -

भलेहि सेत गंगाजल दीठा। जमुन जो साम नीर अति मीठा ॥[६]

वह समझाता है कि तुम्हारा विरह कोई ऐसी वस्तु न थी। मिलन की आशा तो तुम्हें निश्चय ही थी। फिर चिन्ता कौन-सी थी—

काह भएउ तन दिन दस दहा। जौ बरषा सिर ऊपर अहा ॥[७]

और इतनी बातें कहने के बाद फिर मीठी भर्त्सना करता है कि नारी से जो व्यक्ति प्रणय के लिए हाथ पसारता है, नारी उस से नाहीं नहीं करती—

कोई कहु पास आस कै हेरा। धनि ओहि दरस निरास न फेरा ॥[८]

और इतनी मीठी-मीठी बातों के पश्चात्—

कंठ लाइ कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींचि पलुहाई ॥[९]

नागमती प्रसन्न हो गई। रत्नसेन ने मान को हरने के लिए मीठी भर्त्सना, व्यंग, चाटुकारिता और आलिंगन इन चार अस्त्रों का प्रयोग किया। इस का परिणाम यह हुआ कि नागमती का अंग प्रत्यंग हुलस उठा और मानिनी नागमती प्रणय-विभोर हो उठी।

फरे सहस साखा होइ दारिउं, दाख, जंभीर।
सबै पंखि मिलि आइ जोहारे लौटि उहै भइ भीर ॥[1]

और

नागमती हँसि पूछी बाता ॥[2]

परंतु यथार्थ को वह नारी नहीं भूल सकती। वह सिंहल के विषय में ही पूछती है—

कहहु कंत ओहि देस लोभाने। कस धनि मिली भोग कस माने ॥[3]

प्रोषित पतिका नायिका अपने प्रियतम से मिली है उसका यह प्रश्न स्वाभाविक है। वास्तव में संयोग की मधुरता का वातावरण इसी पंक्ति से बनता है। वह यह भी पूछती है कि क्या पद्मावती उस से अधिक सुन्दर है? नारी का ईर्ष्या भरा हृदय कितना भी मधुर हो परंतु नारीत्व को कैसे छोड़ सकता है—

जौ पदमावति सुठि होइ लोनी। मोरे रूप कि सरवरि होनी ॥[4]

वह नारी रत्नसेन पर व्यंग भी करती है कि पुरुष प्रणय में निष्ठ और चतुर नहीं होता—

भँवर पुरुष अस रहै न राखा। तजै दाख महुआ रस चाखा ॥[5]

भौंरा अंगूर छोड़कर महुए पर जाने की ही ग़लती नहीं करता। वह और भी ग़लती करता है—

तज नागेसर फूल सुहावा। कवँल बिसायँध सौं मन लावा ॥[6]

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही

भी [illegible] हुआ है—

[illegible] [illegible] । [illegible] सिंघलदीप [illegible] ॥[1]

[illegible] है—

[illegible] , [illegible] ।
[illegible] , [illegible] ॥[2]

[illegible], [illegible] दिया, [illegible] नहीं दिया। [illegible] [illegible] है—

[illegible] । [illegible] ॥[3]

[illegible] है—

[illegible] हाथ ।
[illegible] नाथ ॥[4]

और

[illegible] । [illegible] ॥[5]

इन शब्दों में [illegible] थी, उस के मन की [illegible] थी। [illegible] के मन की [illegible] है। [illegible] और [illegible] हुई थी [illegible] प्रियतम को पाती है तब उस के मन की क्या दशा होती है, इस का वर्णन इस में नहीं मिलता। यह चित्र अत्यंत आवश्यक है। रत्नसेन के सिंहल में नागमती का

[1] वही

[2] वही

[3] वही पृ० २१८

[4] वही पृष्ठ १८२

[5] वही

संदेश ले जाने वाले पंछी से कहा था—

पंखि, आँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहि।
कोइ न सँदेसी आवहिं तेहि क सँदेस कहाहिं ॥[1]

और नागमती के कारण ही गंधर्वसेन से वह झूठ बोला था।[2] वह रत्नसेन जब उसी नागमती से मिलता है तो कवि की लेखनी जैसे कुण्ठित-सी हो उठती है। वह उस के मन की भावनाओं का वर्णन नहीं कर पाती। और कवि का यह वर्णन पाठक को वह रंग नहीं दिखाता जो कि उसे दिखाने चाहिये थे। हमारे कहने का अर्थ कदापि नहीं है कि जायसी का यह संयोग शृंगार वर्णन अस्वाभाविक है। ऊपर हम दिखला आये हैं कि इस वर्णन की पंक्ति पंक्ति स्वाभाविक है परंतु इस चित्र में हमें वे रंग नहीं मिलते जो इस चित्र को अत्यंत मार्मिक, सजीव और बहुत दिनों तक टिकनेवाला बना देते।

§ ३—नागमती और रत्नसेन के मिलन का एक बहुत हल्का चित्र कवि ने काव्य के प्रारंभ में ही दिया है। परंतु वहाँ पर संयोग शृंगार का सर्वथा अभाव है। नागमती धाय को मारने के लिए तोता दे देती है। रात में राजा आता है तो वह उसे खोजता है। वहां पर भी नागमती मान का ही सहारा लेती है—

रानी उतर मान सौं दीन्हा। पंडित सुआ मजारी लीन्हा ॥[3]

वह कारण भी बतलाती है—

मैं पूछा सिंहल पदमिनी। उत्तर दीन्ह तुम को नागिनी ॥
वह जस दिन तुम निसि अँधियारी। कहाँ बसंत करील क बारी ॥[4]

[1] वही पृष्ठ ८४

[2] गंधर्वसेन से रत्नसेन ने कहा था कि उस का भाई चित्तौर में उस से विद्रोह कर रहा है और अलाउद्दीन चित्तौर पर हमला करने वाला है अतः उसे वहां जाना आवश्यक है।
वही पृष्ठ १८८

[3] वही पृष्ठ ४१

[4] वही

नागमती-रत्नसेन संयोग का एक तीसरा और भी हल्का चित्र कवि ने रत्नसेन के सिंहल की ओर प्रस्थान करते समय का दिया है। नागमती प्रणय में आत्मविभोर होकर रत्नसेन से चरम विनय-पूर्ण स्वर में कहती है—

की हम्ह लावहु अपने साथा। की अब मारि चलहु निज हाथा ॥[१]

पूर्वानुराग से संतप्त रत्नसेन अवहेलना पूर्वक उत्तर देता है—

तुम्ह तिरिया मति हीन तुम्हारी। मूरख सो जो मतै घर नारी ॥[२]

नागमती अति प्रचलित लोक कथा में से उदाहरण देती हुई तर्क देती है—

जहँवाँ राम तहाँ सँग सीता।[३]

चतुर रत्नसेन नागमती के इस तर्क का भी उत्तर देता है—

राघव जो सीता सँग लाई। रावन हरी कौन सिधि पाई ॥[४]

और फिर ऐसी प्रणय की बातों के बीच में वह संसार की क्षण-भगुरता का उपदेश देना प्रारभ कर देता है—

यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानौं नहि देखा ॥[५]

इस प्रकार इन दो संयोग वर्णनों में कवि ने संयोग माधुरी का तनिक भी पुट नहीं दिया। दोनों जैसे रत्नसेन और नागमती के चरित्र का चित्रण करने के लिए और वर्णन की पूर्णता के लिए ही हमारे सामने रखे गए हैं। इसी कारण कहना न होगा कि दोनों में हाज़िर जवाबी भले ही मिल जाए, चरित्र चित्रण की कला भले ही मिल जाए, सरस काव्यत्व का अभाव है।

§ ४—रत्नसेन और पद्मावती को आलंबन के रूप में रखकर कवि ने निम्न स्थलों पर संयोग के चित्र दिए हैं—

[१] वही पृष्ठ ६२

[२] वही

[३] वही

[४] वही

[५] वही

परंतु पद्मावती दृढ़तर थी। वह न तो बेहोश हुई और न नवोढ़ा नायिका की भांति उसे लज्जा ने बांधा। वह उपचार करती है—

सेलेसि चंदन सकुखिन जागा।[1]

परंतु सब कुछ मनुष्य के सोचे-समझे हुए ढंग से ही तो नहीं होता। वह उपचार और उलटा प्रभाव देता है—

अधिकौ सूल सीर तन जागा।[2]

पद्मावती विवश हो उठी। वहां न तो कागज था और न लेखनी। इस कारण—

तब चंदन आखर हिय लिखे।[3]

पद्मावती ने जो लिखा वह पाठक को साधारण ही लगता है—

........................। भीख लेइ तुइं जोग न सिखे॥
बरी आइ तब गा तू सोई। कैसे भुगुति परापति होई॥[4]

वह आगे के लिए भी तरकीब बतलाती है—

अब जौं सूर अहो ससि राता। आएहु चढ़ि सो गगन पुनि साता॥[5]

और सखियों से कहती है—

लिखि कै बात सखिन सौं कही। इहै ठांव हौं बारति रही॥
परगट होहुं त होइ अस भंगू। जगत दियाकर होइ पतंगू॥
जासहुँ हौं चख हेरौं सोइ ठांव जिउ देइ।
एहि दुख कतहुँ न निसरौं को हत्या अस लेइ॥[6]

इतना कहने के पश्चात् वह चली गई—

कीन्ह पयान सबन्ह रथ हांका।[7]

इस मिलन के वर्णन में कवि ने आलंबन के दो व्यक्तित्वों में एक

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही

हुलसा वदन ओप रवि पाई । हुलसि हिया कंचुकि न समाई ॥
हुलसे कुच कसनी बँद टूटे । हुलसी भुजा, वलय कर फूटे ॥
हुलसी लंक कि रावन राजू । राम लखन वर साजहिं आजू ॥
आजु चाँद घर आवा सूरू । आजु सिंगार होइ सब चूरू ॥
आजु कटक जोरा है कामू । आजु विरह सौं होइ संग्रामू ॥[1]

और इसी का परिणाम है कि

अंग अंग सब हुलसे कोइ कतहूँ न समाइ ।
ठावहिं ठांव विमोही गइ मुरछा तनु आइ ॥[2]

इस बार पद्मावती की बारी है। परन्तु रत्नसेन दूर है और उसे पद्मावती की इस दशा की ख़बर भी नहीं है। कवि शायद बसंत खंड की कमी यहां पर पूरी कर रहा है। परंतु कहना न होगा कि कवि का यह संयोग शृंगार भी बड़ा कमज़ोर है। इस में तो बसंत खण्ड जैसी मार्मिकता भी नहीं हैं उस का कारण यही है कि बसंत खण्ड में नायक एवं नायिका दोनों ही उपस्थित हैं परंतु इस मे केवल नायिका ही है।

§ ७—पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में नायक एवं नायिका दोनों ही मौजूद हैं। दोनों आलंबनों की मौजूदगी में शृंगार रस का यह वर्णन है। इस की पृष्ठ भूमि में हमें याद है कि एक बार तो रत्नसेन पद्मावती को देखकर बेहोश हो चुका है और दूसरी बार पद्मावती। एक बार रत्नसेन पद्मावती के प्रणय के लिए न केवल अपना राज्य छोड़ चुका था वरन् वह खुशी खुशी शूली पर चढ़ना भी स्वीकार कर चुका था। और पद्मावती ने भी स्पष्ट एवं सच्चे शब्दों में एक बार कहा था—

जियै तौ जियौं मरौं एक साथा ॥[3]

[1] वही पृष्ठ १३१

[2] वही

[3] वही पृष्ठ १२८

रत्नसेन पंडित हैं परंतु प्रेम में सराबोर हैं । वह उत्तर देता है—

का पूछहु तुम धातु निछोही । जो गुरु कीन्ह अँतर पट ओही ॥
सिधि गुटका अब मो संग कहा । भएउ राँग सत हिए न रहा ॥
सो न रूप जासौं दुख खोलौं । गएउ भरोस तहाँ का बोलौं ॥
जहँ लोना बिरवा कै जाती । कहि कै सँदेस आन को पाती ॥[1]

और वह रसायनिकों की भांति कहता है—

कै जो पार हरतार करीजै । गंधक देखि अबहिं जिउ दीजै ॥[2]

× × ×

होइ अबरक इंगुर भया फेरि अगिनि मँह दीन्ह ।
काया पीतर होइ कनक जौ तुम चाहहु कीन्ह ॥[3]

वह और अधिक दीनता भरे शब्द भी कहता है—

बिष जो दीन्ह अमृत दिखराई । तेहि रे निछोही को पतियाई ॥
मरै सोइ जो होइ निगूना । पीर न जानै बिरह बिहूना ॥[4]

× × ×

सिद्ध गुटिका जा पहँ नाहीं । कौन धातु पूछहु तेहि पाहीं ॥[5]

वह लाचार एवं संतप्त स्वर में कहता है—

मिलि जो पीतम बिछुरहि काया अगिनि जराइ ।
की तेहि मिलें तन तप बुझै की अब मुए बुझाइ ॥[6]

[illegible] बताती है कि अब पद्मावती तो नहीं मिलेगी और चिढ़ाने
स्वर में कहती है कि [illegible] भी बेकार है—

अब सो चाँद गगन महँ छपा । लालच कै कित पावसि तपा ॥[7]

[illegible] दुखी हुई कहती है कि पद्मावती का पता तो उन्हें

---

१ वही । ५ वही ।
२ वही । ६ वही ।
३ वही । ७ वही ।
४ वही, पृ० १४८

जाइ न मेटा ताकर कहा ।[१]

× ×

मान न करसि पोढ़ करु लाड़ू ।[२]

और उसे रत्नसेन के पास ले गईं। परंतु राजा सुखद प्रतीक्षा में व्याधिग्रस्त हो चुका था। सखियां उस में विबोध जगाती हैं। और जागने पर वह

गही बांह धनि सेजवाँ आनी ।[३]

पद्मावती में 'व्रीड़ा' का संचारी भाव जागा—

अंचल ओट रही छपि रानी ।[४]

उस में 'त्रास' भाव भी जागता है और वह उसे ग्लानि के रूप में प्रगट करती है—

ओहट होसि जोगि ! तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी ॥[५]

राजा अपने प्रेम का इज़हार करता है—

मैं तुम्ह कारन पेम पियारी। राज छांड़ि कै भएउ भिखारी ॥[६]

रानी को यह कथा अच्छी लगती है परंतु वह इसे छिपाती हुई कहती है—

अपने मुँह न बड़ाई छाजा। जोगी कतहुँ होहिं नहिं राजा ।[७]

रानी का यह मीठा तिरस्कार संयोग के वातावरण को और अधिक मधुर बना देता है। रानी एक चतुर उक्ति कहती है—

रैनि जो देखै चंद मुख ससि तन होइ अलोप ।
तुहुँ जोगी तस भूला करि राजा कर ओप ॥[८]

परंतु राजा एक गंभीर बात कहकर इस का उत्तर देता हुआ सारी

[१] वही
[२] वही
[३] पृष्ठ १५२
[४] वही
[५] वही
[६] वही
[७] वही पृष्ठ १५३
[८] वही

जोड़ी मिली हो—

तस होइ मिले पुरुष औ गोरी। जैसे बिछुरी सारस-जोरी ॥[1]

प्रिय ने प्रियतमा के गले में भुजाएँ डालीं, प्रियतमा उस के हृदय से चिपट गई। प्रिय अधर-पान करने लगा और स्त्री के शृङ्गार संयोग के अस्त-व्यस्त क्रिया-कलाप से नष्ट होने लगे—

पिय धनि गही, दीन्ह गलबाहीं। धनि बिछुरी लागी उर माहीं ॥
ते छकि नव रस केलि कराहीं। चोका लाइ अधर-रस लेहीं ॥
धनि नौ सात, सात औ पाँचा। पूरुष दस तें रहै किमि बांचा ॥[2]

काम-चतुरा नारी हृदय में और अधिक चिपट गई—

चतुर नारि चित अधिक चिहूँटी। जहां पेम बाढ़ै किमि छूटी ॥[3]

प्रिय ने अधर पान किया और उरोजों का स्पर्श किया—

दारिउं, दाख, बेल रस चाखा। पिय के खेल धनि जीवन राखा ॥[4]

और इस के बाद—

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधाँसि बिरह-संग्रामा ॥
लीन्ह लंक कञ्चन-गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा ॥
औ जोबन मैमंत बिधाँसा। बिचला बिरह जीउ जो नासा ॥
टूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी मांग, भंग भए केसा ॥
कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार, मोति छहरानी ॥
बारी, टांड़ सलोनी टूटी। बाहूँ कँगन कलाई फूटी ॥
चंदन अंग छूट अस भेंटी। बेसरि टूटि, तिलक गा मेटी ॥[5]

और—

पिउ पिउ करत जो सूखि रहि धनि चातक की भाँति।
परी सो बूंद सीप जनु, मोती होइ सुख-सांति ॥[6]

[1] वही पृष्ठ १५९
[2] वही
[3] वही
[4] वही पृष्ठ १६०
[5] वही
[6] वही

किन्तु इस संभोग के अति कामुक तथा अति अमवश्यक वातावरण और सर्वथा अनावश्यक अभिधात्मक वर्णन के पश्चात कवि ने पाठक के मस्तिष्क को इस की प्रतिध्वनियों के लिए स्वच्छन्द नहीं छोड़ दिया। पद्मावती विनय करती है कि प्रिय प्रणय की मदिरा थोड़ा-थोड़ी पियो—

विनय करै पदमावति बाला। सुधि न, सुराही पिएउ पियाला ॥[१]

और—

पै, पिय! बचन एक सुनु मोरा। चाखु पिया! मधु थोरै थोरा ॥
पेम-सुरा सोइ पै पिया। लखै न कोइ कि काहू दिया ॥
चुका दाख मधु जो एक बारा। दूसरि बार लेत बेसँभारा ॥
एक बार जो पी कै रहा। सुख-जीवन, सुख-भोजन लहा ॥
पान फूल रस रंग करीजै। अधर अधर सौं चाखा कीजै ॥[२]

किन्तु पत्नी सुहागरात में पति को उपदेश दे, यह तो शोभा नहीं देता। इस कारण वह कहती है कि प्रिय मैं कुछ जानती नहीं हूँ, तुम जो चाहो करो मैं तो तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ—

जो तुम चाहौ सो करौ, ना जानौं भल मंद।
जो भावै सो होइ मोहिं तुम्ह, पिउ! चहौं अनंद ॥[3]

चतुर प्रेमी रत्नसेन उत्तर देता है कि प्रेम सुरा बड़ी चीज़ है। उसे पाकर जीने मरने का भय नहीं रहता—

सुनु, धनि! प्रेम सुरा के पिये। मरन जियन डर रहै न हिए ॥[४]

जिसे एक बार वह सुरा पीने को मिल गई वह उस के बिना रह नहीं सकता। प्रेम के सामने अर्थ-द्रव्य सभी त्याज्य हैं और प्रेमी उसी के रस में रात दिन डूबा रहता है—

जा कहँ होइ बार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा ॥
अरथ दरब सब देइ बहाई। की सब जाहु, न जाइ पियाई ॥

[१] वही
[२] वही
[3] वही
[४] वही पृष्ठ १६२

रातिहु दिवस रहै रस-भीजा। लाभ न देख, न देखै छीजा ॥[1]

कवि इस संभोग के प्रभात का भी वर्णन करता है पद्मावती के आभूषण टूट गए। चोली फट गई और पद्मावती का रंग बदल गया—

सब निसि सेज मिला ससि सूरू। हार चीर वलया भए चूरू ॥
सो धनि पान, चून भइ चोली। रंग-रँगीलि निरँग भइ भोली ॥[2]

केश बिखर गए और

अलक सुरंगिनि हिरदय परी। नारँग छुव नागिनि विष-भरी ॥
लरी मुरी हिय-हार लपेटी। सुरसरि जनु कालिंदी भेंटी ॥
जनु पयाग अरइल बिच मिली। सोभित बेनी रोमावली ॥
नाभी लाभु पुन्नि कै कासीकुण्ड कहाव।
देवता करहिं कलप सिर आपुहि दोष न लाव ॥[3]

और इस संभोग माधुरी का चरम विन्दु वहां पर है जब कि रानी पद्मावती सुहागरात के पश्चात कहती है—

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओही देखहुँ ठाँवहिं ठाँऊँ ॥
जौ जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन मन सौं नहि होइ निनारा ॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहिँ कोउ आना ॥[4]

इस प्रकार कवि ने सुहागरात का वर्णन सुन्दर किया है। संभोग के मीठे चित्र इस में मौजूद हैं। लेकिन कवि ने एक बात छोड़ दी है। युग युगों की चाहों, अभिलाषाओं और सपनों से भरे प्रेयसि और प्रियतम जब मिलते हैं तब न तो प्रेयसी ऐसी बातें कहती है जैसी कि पद्मावती ने रत्नसेन से कहती है और न प्रियतम ऐसे उत्तर देता है जैसे रत्नसेन ने दिया है। जहाँ पर वे अपनी-अपनी कथा कहते हैं वह अंश तो बड़ा स्वाभाविक है। परन्तु 'मरे तो मरौं जियौं एक साथा'[5]

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही पृष्ठ १८३
[5] वही पृष्ठ १२८

का प्रेम उनके बाद भी पद्मावती रत्नसेन की प्रतीक्षा सहना है उसे यह भी विशेष स्वाभाविक नहीं जान पड़ता ।

ऐसे साधारणतया संयोग का यह चित्र बहुत अपूर्ण है । यदि दोनों की उन्माद में कुछ दूर और अधिक स्पष्ट करता तो चित्र और अच्छा हो सकता था ।

§ ८—यह वसंत वर्णन में फिर संयोग शृंगार दिया गया है । कवि इस में बाह्य-अर्थ ऋतु का प्रभाव पद्मावती एवं रत्नसेन पर दिखाया है । यह वर्णन परंपरागत है और विशेष स्वाभाविक नहीं है । न तो कवि ऋतु क्रीडाओं का ही विशेष वर्णन किया है और न संयोगियों के मन की भावनाओं का ही । विभावों के अतिरिक्त संचारी भावों और अनुभावों की सफल योजना की कमी के कारण यह वर्णन अपनी सजीवता खो देता है ।

§ ९—जहाँ समुद्र खण्ड में समुद्र में बिछुड़कर पद्मावती और रत्नसेन मिलते हैं जैसे प्यासे को पानी मिल गया हो और कमल को सूर्य—

जेइ सो प्यास पद्मावति पाना । पानि पियासा मरत पियासा ॥
पानी पिया कँवल जस गया । निरमल सुरुज समुद्र महँ भया ॥[1]

और—

जानहु सूर कीन्ह परनामू । बिन पहुरा, भा कँवल-बिगासू ॥
कँवल जो बिहँसि सूर-मुख दरसा । सूरुज कँवल दिस्टि सौं परसा ॥
लोचन कँवल सिरी-मुख सूरू । भएउ अनंद दुहूँ रस मूरू ॥
मालति देखि भँवर गा भूली । भँवर देखि मालति मन फूली ॥
देखा दरस, भए एक पासा । वह ओहि के वह ओहि के आसा ॥
कंचन दाहि दीन्ह जनु जीऊ । ऊआ सूर, [illegible]

पांय परी धनि पीउ के, नैनन्ह सौं [illegible] ।
अचरज भएउ सबन्ह कहँ भइ ससि कँप [illegible] ॥[2]

१ [illegible] २ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] नहीं [illegible] ।

[illegible] में [illegible] ।

§ १०—[illegible] है जिस में पद्मावती [illegible] में [illegible] है—

सूर हँसै, ससि रोइ प्रकासा । टूट आँसु जनु नखत-अकासा ॥
रहै न राखी होइ निमोसी । तहवाँ जाहु जहाँ निसि बासी ॥
हौं कै नेह कुआँ मँह मेली । सींचे लागि झुरानी बेली ॥[2]

यह रूप गर्विता भी है —

मैं हौं सिंघल कै पदुमिनी । सरि न पूज जंबूनागिनी ॥
हौं सुगंध निरमल उजियारी । पद बिख भरी डेरानि थारी ॥
मोरी बास भँवर सँग लागहिं । ओहि देखत मानुष डर भागहिं ॥
हौं पुरुषन्ह कै चितवन दीठी । जेहि के जिउ अस अहौं पईठी ॥[3]

संयोग का यह चित्र भी पद्मावती में अकेला है ।

§ ११—संयोग का अंतिम चित्र उस समय का है जब कि रत्नसेन दिल्ली से लौटा है । उस के लौटने का संदेश पाते ही पद्मावती के लिए—

रैनि गई, दिन कीन्ह अँजोरा ।

[1] वही पृष्ठ २१०-११

[2] वही पृष्ठ २१८

[3] वही

वह अपने प्रियतम से कहती है—

मिलि रहौं प्रिय देह चाँपि अंकुस । भएउँ नारि जहँ पानी तहँ सूख ।[1]

और राजा का पूछना उचित है। परन्तु उनके मन में अभी संकोच है। वह कहती है— प्रिय, अब तुम मुझे क्षमा करना नहीं। मैं तो तुम्हारी हूँ, तुम्हारा ...

पूछा कीन्ह रहीं दुख बाता । मई दुःखत, काम मोहि छाता ॥

गए तन जोबन आदि करऊँ । जोग आदि सेवआदि परऊँ ॥

ऐन पूरि कै [illegible] । [illegible] ॥

तोल निहारि [illegible] । [illegible] ॥[2]

बाद में राजा नागमती से भी मिलता है। नागमती भी अपनी व्यथा कहती है—

छाँड़ि गएउ सरवर नहिं मोही । सरवर सूखि गएउ बिनु तोहीं ॥

केलि जो करत हंस उड़ि गयऊ । दिनियर निपट सो बैरी भयऊ ।[3]

इस कथा के अन्त में ही यह बात भी बतलाती है—

कहाँ एक देवपाल पठाई । बाम्हनि-भेस दूत मोहिं पाई ।[4]

इस दूत से आगे चित्र में और कोई नया रंग कवि ने नहीं भरा। राजा के मन में देवपाल पर क्रोध उत्पन्न होता है।[5]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संयोग के ये विविध चित्र अपने आप में विभिन्न हैं। कहीं पर कोई भी समानता नहीं। नागमती में नारीत्व का माधुर्य है। पद्मावती के चित्रों में सर्वत्र पद्मावती में एक अहंकार की भावना है जो चित्रों की मार्मिकता में कुछ कमी ला देती है। यदि पद्मावती का नारीत्व भी वैसा ही विनम्र होता तो संयोग के

१ वही

२ वही पृष्ठ २३२-२३४

३ वही पृष्ठ २३५

४ वही

५ सुनि देवपाल राय कर चालू । राजहि कठिन परा हिय सालू ॥ वही पृष्ठ २३७

वियोग शृंगार

§ १—मलिक मुहम्मद जायसी ने वियोग शृंगार दो आलंबनों के आधार चित्रित किया है—

१—नागमती-रत्नसेन

२—पद्मावती-रत्नसेन

§ २—नागमती-रत्नसेन विषयक वियोग शृंगार निम्न लिखित स्थलों पर चित्रित मिलता है—

१—नागमती वियोग खंड[1]

२—नागमती संदेश खंड[2]

३—चित्तौर आगमन खंड[3]

४—पद्मावती-नागमती विलाप खंड[4]

५—पद्मावती-नागमती सती खंड[5]

§ ३—नागमती वियोग खंड में नागमती का विरह है। नागमती यह जानती है कि उस का विवाहित पति जो कि उस के जीवन का तथा भावुकता का सर्वस्व है, एक दूसरी स्त्री के सौंदर्य का वर्णन एक तोते के मुख से सुन कर सात समुद्र पार सिंहलद्वीप उस को प्राप्त करने के लिए राजपाट, घर-द्वार सब कुछ छोड़कर योगी बनकर चला गया है और नागमती की गोद भी सूनी है। इस दारुण पृष्ठ भूमि पर कवि ने नागमती के विरह का वर्णन किया है। वेदना का जितना निरीह, निरावरण, मार्मिक, गंभीर, निर्मल एवं पावन स्वरूप इस विरह वर्णन में मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ १७२-८०

[2] वही पृष्ठ १८१-१८७

[3] वही पृष्ठ २१४-२१९

[4] वही पृष्ठ ३००-३०२

[5] वही पृष्ठ ३३९-३४०

यह ऐसे भी दिखाती है कि पपीहे की प्यास कभी न बुझी तो बुझती रही है—

पपीहै स्वाती सौं जस प्रीती । टेकु पियास, बांधु मन थीती ॥१

खंजनों के आदर के रूप में आकाश में गया पानी खेत में भरा पर हो जाता है—

परनिदि दीख गगन सौं नेरा । पलटि ताप दपां ऋतु केरा ॥२

और बसंत भी शाखाओं में भरा हुआ फिर फिर घूम घूम कर आता है—

पुनि बसंत ऋतु आव नवेली । सो रस, सो मधुकर, सो बेली ॥३

अवश्य लौटेगा, नारी का यह विश्वास अत्यंत दृढ़ है क्यों कि—

तरनि कुमुदिनि के सहँ तें घना पलुहंत ॥४

परंतु नागमती विवश है । प्रकृति का उद्दीपन उस के लिए असह्य है । वह अपनी सखी को उत्तर देती है । और यही उत्तर एक बारह-मासे के रूप में रखा गया है ।

असाढ़ का महीना है, आकाश में बादल गरज रहे हैं । यह गरज नहीं है, विरह अपनी युद्ध-घोषणा के रूप में बाजे बजा रहा है—

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा । साजा बिरह दुंद दल बाजा ॥५

बादल उसी विरह की सेना है और बग पंक्ति उस की श्वेत ध्वजा—

धूम, साम, धौरे घन धाए । सेत धजा बग पाँति देखाए ॥६

तलवारें चल रही हैं और बाणों की वर्षा हो रही है—

खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा । बुंद-बान बरसहि घन घोरा ॥७

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही

नागमती क्या करे! वह किस से सहायता की प्रार्थना करे। उस का तो केवल एक ही स्वामी एवं सहायक है। वह उसी से अत्यंत कातर स्वर में विनय करती है—

कंत! उबारु मदन हौं घेरी।[1]

क्योंकि दादुर, मोर और कोकिल उस के प्राणों में हूक-सी जगा रहे हैं और बिजली तो जैसे उस के प्राणों तक को मरोड़े डालती है—

दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ॥[2]

परंतु प्रिय न आए। नागमती एक गहरी सांस लेकर कहती है कि जिस का प्रिय उस के घर पर है, वही सुखी है—

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥[3]

सावन की कथा तो और भी दारुण है। पानी बरस रहा है। खेतों में भरनी लगी है परंतु विरहणी मुरझाती जा रही है—

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं विरह झुरानी॥[4]

वह पागलों की भाँति पूछती है—

कहं कंत सरेखा?।[5]

उस के नेत्रों से रक्त के आँसुओं की धारा बह रही है—

रकत के आँसु चलहि भुइँ टूटी।[6]

ऐसा प्रतीत होता है मानो—

रँगि चली जस बीर बहूटी।[7]

सखियों की प्रसन्नता उस के दुख को और बढ़ा रही है। वे अपने प्रिय के साथ हिंडोलों में झूल रही हैं—

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही पृष्ठ १७४
[7] वही

सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला । हरियर भूमि कुसुंभी चोला ॥[1]

नागमती भी हिंडोले में है। उस का हृदय ही हिंडोला है और विरह उसे झूला रहा है—

हिय हिंडोल अस डोलै मोरा । बिरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥[2]

वह अबोध पतंगे के समान प्राण गवाकर अज्ञात पथ पर बढ़ रही है—

बाट असूझ अथाह गँभीरी । जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी ॥[3]

और जहाँ तक देखती है सारा संसार पानी से डूबा हुआ दिखलाई पड़ता है—

जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी ।[4]

जल में नाव पर बैठकर ही पार जाया जा सकता है। नागमती के पास नाव तो है परंतु खेवक नहीं है—

मोर नाव खेवक बिनु थाकी ।[5]

और खेवक सात समुद्र पार है। वह विवशता से भरे स्वर में कहती है -

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बन ढांख ।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह, ना मोहि पांव न, पाँख ॥[6]

रत्नसेन वहाँ अपने पैरों से गया था और हीरामन पंखों से। नागमती स्त्री है, उस के पास न तो पांव है और न पंख। वह प्रिय तक कैसे पहुंच सकती है।

भादों का महीना आ गया। यह बड़ी कठिनाई से कटने वाला महीना है। लंबी-लंबी काली-काली रातें काटे नहीं कटतीं—

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी ॥[१]

प्रिय दूसरी जगह है और रंग मंदिर सूना है। शैया नागिनी के समान डँस रही है—

मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा ॥[२]

नागमती रात कैसे काटती है इस के विषय में कहती है—

रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी ॥[३]

बिजली चमकती है, बादल गरजते हैं और विरह विरहिणी को ग्रस रहा है—

चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा ॥[४]

मघा नक्षत्र में पानी झकोरे देकर बरस रहा है। इस का प्रभाव नागमती पर पड़ता है। उस के दोनों नेत्र ओली के समान चू रहे हैं—

बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी ॥[५]

भरे भादों के महीने में विरहिणी सूखती चली जा रही है—

धनि सूखै भरे भादौं माहाँ।[६]

किन्तु

अबहुँ न आएन्हि सींचेंन्हि नाहा ॥[७]

पुरवाई चलते समय भी मुरझाने की तो एक ही उपमा तथा समानता नागमती को दिखलाई पड़ती है—

पुरवा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी ॥[८]

थल जल से भर गया है। धरती और आसमान मिलकर एक हो गए हैं। यौवन की आयु है प्रियतम, आओ और विरहिणी को सहारा दो—

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही
८ वही

जल थल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक ।
धनि जोबन अवगाह महँ दे बूड़त, पिउ ! टेक ॥[1]

क्वार का महीना आ गया । पानी घट गया है । प्रियतम अब आ जावो । विरहिणी का शरीर लट गया है—

लाग कुआर, नीर जग घटा । अबहूँ आउ, कंत ! तन लटा ॥[2]

तुम्हें देखते ही काया फिर पल्लवित होगी—

तोहि देखें, पिउ ! पलुहै कया । उतरा चीतु, बहुरि करु मया ॥[3]

चित्रा नक्षत्र आ गया । पपीहे को स्वाति मिल गया—

चित्रा मित्र मीन कर आवा । पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥[4]

अगस्त भी उदित हो गया—

उआ अगस्त, हस्ति घन गाजा । तुरय पलानि चढ़े रन राजा ॥[5]

और

स्वाति-बूँद चातक मुख परे । समुद सीप मोती सब भरे ॥[6]

अब तो हंस, सारस और खंजन लौट आये हैं—

सरवर सँवरि हंस चलि आये । सारस कुरलहि, खँजन देखाए ॥[7]

काँस के फूलने से संसार में कुछ प्रकाश-सा बढ़ गया है—

भा परगास, काँस बन फूले ।[8]

परन्तु नागमती का प्रियतम नहीं लौटा । वह विदेश में नागमती को भूलकर रह गया है—

कंत न फिरे, बिदेसहि भूले ।[9]

वह प्रिय से प्रार्थना करती है—

1 वही
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही
6 वही
7 वही पृष्ठ १७५
8 वही
9 वही

बिरह-हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर ।
बेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर ॥[1]

किन्तु प्रिय तक यह प्रार्थना नहीं पहुँची । और इसी कारण कार्तिक आ गया। शरद चंद्र का शुभ्र प्रकाश चारों ओर छा गया है । संसार शीतल है परन्तु नागमती विरह में जल रही है—

कातिक सरद-चंद उजियारी । जग सीतल, हौं बिरहै जारी ॥[2]

चौदहों कला वाला चांद (मुसलमानी विश्वास चांद में चौदह कलाएं ही मानता है) प्रकाश दे रहा है—

चौदह करा चांद परगासा ।[3]

परन्तु नागमती के लिए यह शीतल चांदनी धरती आकाश को जलाए दे रही है—

जनहुँ जरै सब धरति अकासा ।[4]

और सब के लिए जो चांद है वह नागमती के लिए राहु है—

तन मन सेज करै अगि दाहू । सब कहँ चंद भएउ मोहि राहू ॥[5]

चाँदनी में गर्मी ही नहीं है, अँधेरा भी है—

चहूँ खण्ड लागै अँधियारा ।[6]

इस का कारण भी वह जानती है—उस का प्रिय उस के घर पर नहीं है—

जौं घर नाहीं कंत पियारा ॥[7]

वह याचना करती है, निष्ठुर ! अब भी आ जाओ । दिवाली का जगमगाता त्योहार संसार में आ गया है—

१ वही
२ वही
३ वही । मुसलमान चाँद की १४ कलाएँ मानते हैं ।
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही

अबहूँ, निठुर ! आउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा ॥[1]

सखियाँ प्रसन्न हैं । वे गाती हैं—

सखि झूमक गावँ अँग मोरी ।[2]

किन्तु उस की जोड़ी बिछुड़ गई है, वह सूखी जा रही है—

हौं झुराव बिछुरी मोरी जोरी ॥[3]

जिन के घर प्रिय हैं उन की मनोकामनाएं पूरी हो रही हैं—

जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा ।[4]

परन्तु उसे विरह सता रहा है—

मो कहँ विरह[5]

अकेला विरह ही नहीं है वरन्

सवति-दुख दूजा[6]

रत्नसेन, सखियां तो त्यौहार मना रही हैं । वे गाती हैं और खेल खेलती हैं । परन्तु तुम्हारे बिना नागमती क्या गाए ? वह सिर में मिट्टी भर रही है—

सखि मानैं तिउहार सब गाइ, देवारी खेलि ।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि ॥[7]

अगहन आ गया । दिन घटकर छोटा हो गया और रात बढ़कर लंबी हो गई है—

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी ।[8]

इस लिए काटना दूभर हो गया है—

दूभर रैनि जाइ, किमि गाढ़ी ।[9]

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही
८ वही
९ वही

वह विरह में दीपक के समान जलती रहती है—

जरौं विरह जस दीपक-बाती।[1]

परन्तु फिर भी ठंढ के कारण हृदय कांप रहा है—

काँपै हिया जनावै सीऊ।[2]

इस का उपचार एक ही है—प्रिय का संग—

तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।[3]

घर घर सब ने रंगीन वस्त्र धारण किए हैं परन्तु नागमती का रूप-रंग रत्नसेन लेकर चला गया—

घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप-रँग लेइगा नाहू॥[4]

न वह लौटा और न उस का रूप रंग। लेकिन अगर अभी वह लौट आए तो रूप रंग लौट आएंगे—

पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई॥[5]

यह सब तो हृदय को रमाने की बातें हैं। सचाई तो यह है कि

बज्र-अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा॥[6]

प्रिय यह दुख-दर्द नहीं जानता—

यह दुख-दगध न जानै कंतू।[7]

इसी कारण—

जोबन जनम करै भसमंतू।[8]

परन्तु नागमती इतना सोचकर संतोष नहीं करती। वह अत्यंत व्यथित, दग्ध तथा मार्मिक स्वर एवं शब्दों में कहती है कि हे भौंरे और हे काग, प्रिय से मेरा संदेश कहना कि वह विरहिणी जलकर मर

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही

अकेली रात में सखियां भी नहीं रहतीं। विरहिणी कैसे जीवित रह सकती है—

रैनि अकेलि साथ नहिँ सखी। कैसे जियै विछोही पखी ॥[1]

उस की दशा बड़ी ही करुण है—

बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा ॥[2]

नागमती अपनी व्यथा कैसे करुणा से अनुप्राणित शब्दों में कहती है—

रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख ॥[3]

माघ का महीना आ गया। चारों ओर पाला पड़ने लगा है। विरह और भी तीव्र हो गया है—

लागेउ माघ, परै अब पाला। विरहा काल भएउ जड़काला ॥[4]

रुई बेकार है—

पहल पहल तन रुई झांपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय कांपै ॥[5]

इस लिए हे नाथ—

आइ सूर होइ तपु[6]

क्योंकि तुम्हारे विना जाड़ा नहीं छूटता—

तोहि विनु जाड़ न छूटै माहा[7]

इसी प्रेयसी और प्रियतम के मिलन में रस का मूल है। तू भौंरा है, मेरा यौवन फूल है। तू रसप्रेमी है, मैं रस की खान हूँ। आ, रस ले—

एहि माह उपजै रसमूलू। तूँ सो भौंर, मोर जोबन फूलू ॥[8]

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही

किन्तु नागमती की दशा तो बड़ी दयनीय हो रही है—

नैन चुवहिं जस महवट नीरू । तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू ॥[1]

और माघ मास में [illegible] है मानो ओले पड़ रहे हों और ठंडी हवा के झोंके चल रहे हैं—

टप टप बूँद परहिं जस ओला । बिरह पवन होइ मारै झोला ॥[2]

प्रिय के बिना शृंगार कैसा, आभूषण और सुन्दर वस्त्र कहाँ। गले में हार क्या पहिना जाए क्योंकि नागमती की ग्रीवा ही डोरे के समान [illegible] हो रही है—

केहि क सिंगार को, पहिर पटोरा । गीउ न हार, रही होइ डोरा ॥[3]

प्रिय !

तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल ।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल ॥[4]

फागुन के महीने में तो नागमती कहती है कि जाड़ा चौगुना हो गया है,

फागुन पवन झकोरा बहा । चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा ॥[5]

उसका शरीर पीले पत्ते की भाँति हो गया है और विरह उसे झकझोर रहा है—

तन जस पियर पात भा मोरा । तेहि पर बिरह देइ झकझोरा ॥[6]

प्रकृति का चित्र यह खींचती है—पुराने पत्ते झड़ रहे हैं, नए आ रहे हैं, फूलों से डालियाँ लद रही हैं और वनस्पति का हृदय उल्लास से आपूरित है—

करहिं बनसपति हिये हुलासू ।[7]

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही पृष्ठ १७७
६ वही
७ वही

परन्तु नागमती की तो दुनियाँ दूसरी हो उठी है—

मो कहँ भा जग दून उदासू ॥[१]

फागुन में सब तो चांचरी खेलती हैं किन्तु उस के शरीर में जैसे होली-सी जल रही है—

फागु करहिं सब चाँचरि जोरी । मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी ॥[२]

यदि इस प्रकार जलते हुए भी प्रिय नागमती को देख ले तो नागमती के जी में कोई मलाल न रह जाएगा—

जौ पै पीउ जरत अस पावा । जरत मरत मोहिं रोष न आवा ॥

राति दिवस बस यह जिउ मोरे । लगौं निहोर कंत अब तोरे ॥[३]

यदि यह न हो सके तो नागमती की यह इच्छा है कि उस का शरीर जल जाए और पवन उस की राख को उड़ाकर उस पथ पर बिखेर दे जिस पर प्रिय के पाँव पड़ें—

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन ! उड़ाव' ।

मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पांव ॥[४]

चैत तो वसंत का महीना है। परंतु नागमती को क्या ! उस के लेखे सारा संसार उजाड़ है—

चैत बसंता होइ धमारी । मोहिँ लेखे संसार उजारी ।[५]

वह प्रियतम से यही प्रार्थना करती है कि आम फरने लगे । प्रिय ! अब भी आ जाओ और मुझे सौभाग्यवती बनाओ—

बौरे आम फरै अब लागे । अबहुँ आउ, घर कंत सभागे ! ॥[६]

सब तरफ फूल फूले हैं —

सहस भाव फूलीं बनसपती ।[७]

[१] वही
[२] वही
[३] वही
[४] वही
[५] वही
[६] वही
[७] वही

वह देखती है कि भौंरे मालती पुष्पों पर घूम रहे हैं —

मधुकर घूमहिं सँचरि मालती।[1]

परंतु उस के लिए तो सब जगहों पर ही काँटे ही काँटे हैं—

मोकहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे ॥[2]

वह अपने शरीर के यौवन के विषय में भी कहती है—

फरि जोबन भए नारँग साखा। सुआ—बिरह अब जाइ न राखा ॥[3]

इस कारण—

घिरिनि परेवा होइ, पिउ! आउ बेगि परु टूटि।
नारि पराए हाथ है तोहि बिनु पाव न छूटि ॥[4]

यहाँ पर नागमती रत्नसेन को घिरिन परेवा का जो दृष्टांत दे रही है वह उस की अपनी व्यग्रता का परिचायक है।

वैशाख में गर्मी पड़ने लगी चंदन तक नागमती के लिए आग के समान गरम है—

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी ॥[5]

सूर्य भी तो जल उठा है—

सूरज जरत हिवंचल ताका। बिरह-बिजागि सौंह रथ हाँका ॥[6]

इस जलती हुई वज्राग्नि में प्रिय अपनी छाँह करके विरहिणी की रक्षा करो—

जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ।[7]

और अंगारों में पड़ी विरहिणी की आग को बुझाओ—

आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ।[8]

क्योंकि तुम्हारे दर्शन मात्र से ही नारी शीतल हो जाएगी—

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही

तोहि दरसन होइ सीतल नारी।[१]

इस कारण आओ और विरह-अग्नि के अंगारों को फूल जैसा शीतल करो—

आइ आगि तैं करु फुलवारी।[२]

नागमती व्यंग द्वारा अपनी व्यथा की ओर संकेत करती हुई सखी से कहती है कि मानसरोवर में जो कमल का फूल फूला था वह जल के अभाव में सूख गया है लेकिन अगर प्रिय उसे फिर सींचे तो वह फिर हरा-भरा हो सकता है—

कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
अबहूँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिउ सींचै आइ॥[३]

परंतु प्रिय नहीं आया और जेठ का महीना आ गया। लू चल रही है। बवंडर उठ रहे हैं। चारों ओर अंगार बरस रहे हैं—

जेठ जरत जग, चलै लुवारा। उठहिं बवण्डर, परहिं अँगारा॥[४]

नागमती अपनी दशा बतलाती है—

अधजर भइउँ, माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा॥[५]

इसी कारण वह प्रार्थना करती है—

अबहुँ आउ।[६]

नागमती जिस आग में जल रही है, उस को कोई पर्वत भी नहीं झेल सकते। इस कारण जायसी कहते हैं—

गिरि, समुद, ससि, मेघ, रवि सहि न सकहिं वह आगि।
मुहम्मद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि॥[७]

संक्षेप में बारहमासे में वर्णित विरह का यही चित्र है। नागमती

१ वही, पृ० १७८
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही

एकान्तिक निकट से बहुमिक के आने की प्रतीक्षा कर रही है । नागमती अपनी आर्द्रभक दशा द्वारा उस के विरह को अधिक उद्दीप्त कर रहे हैं । इस विरह वर्णन करने के बाद गा ध्यान प्रकृति वर्णन की ओर न जाकर विरह वर्णन की ओर ही जाता है । कवि ने सखी की इस उक्ति द्वारा—

पाट-महादेइ ! हिए न हारू ।[1]

कहकर वातावरण की सृष्टि की है । यह सम्बोधन नागमती के विरह की सारी तीव्रता को निश्चित करने में असमर्थ है । उस के विरह का सब से अधिक मार्मिक चित्रण बारह मासे में हुआ है ।

इस वियोग वर्णन में कवि ने बारहमासे के अतिरिक्त और भी विशेष वर्णन किया है । कवि नागमती का एक चित्र देता है—

साँझ भए झुरि झुरि पथ हेरा । कौनि सो घरी करै पिउ फेरा ?[2]

संध्या समय बार-बार नागमती पथ की ओर देखती है । पता नहीं किस समय प्रियतम आ जाए । विरहिणी की यह कितनी स्वाभाविक वृत्ति है !

दहि कोयला भइ कंत सनेहा ।[3]

नागमती तो वैसे ही काली थी, फिर विरह की आग में और झुलस जल रही है । अब वह कोयले के समान हो गई है ।

तोला माँसु रहा नहिं देहा ।[4]

उस के शरीर में तोले भर भी मांस नहीं रहा ।

रकत न रहा, बिरह तन गरा ।[5]

रक्त भी नहीं बचा । विरह में शरीर गल गया है और रत्ती-रत्ती करके नयनों के रास्ते से बह गया है—

[1] वही पृष्ठ १७३
[2] वही पृष्ठ १७१
[3] वही
[4] वही
[5] वही

रती रती कर नैनन्ह ढरा ॥[1]

(वास्तव में एक ऐसी स्त्री का चित्र जो बिलकुल कोयले के समान काली है, जिस के शरीर में मांस नहीं है, केवल हड्डियां ही बची हैं, जिस के शरीर में खून भी नहीं है और जो दुख की मारी है, जब हमारी कल्पना में आता है तो मन घबरा उठता है। वह भयंकर नहीं लगता क्योंकि वह स्त्री दया की पात्र है। जीवन की विषमताओं के बीच से वह गुज़र रही है। न जाने कितनी करुणा पाठक के मन में इस चित्र को देखकर उमड़ पड़ती है। वह अगाध करुणा, सहानुभूति एवं दया की पात्र नागमती घर-घर घूम कर रत्नसेन की खोज करती है। परंतु जब कोई मनुष्य उसे उस के प्रियतम की बात नहीं बतलाता तो वह पक्षियों से पूछती है—

बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झंखि।
मानुष घर घर बूझि कै, बूझै निसरी पंखि ॥[2])

आखिर रत्नसेन को ले जानेवाला हीरामन एक पक्षी ही तो था। वह कौए से भी प्रार्थना करती है--

जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा।[3]

परंतु उस के प्रार्थना करने से होता क्या है। वह दूसरे पक्षियों की शरण लेती है। वह सभी पक्षियों में अपनी समानता देखती है, इसी कारण कहती है—

हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा ? ॥
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौं चित रोप न दूसर ठाँऊँ ॥
जाहि बया होइ पिउ कंठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा ॥
कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारै 'लेइ लेइ दही' ॥
पेड़ तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा ॥[4]

[1] वही।
[2] वही
[3] वही
[4] वही १८०

कोई पंछी उस की सहायता नहीं करता। कैसे करे भी तो कैसे ? विरह के कारण इतनी तप रही है कि जिस पक्षी के पास जाती है वह जल जाता है और जिस वृक्ष के नीचे जाती है उसके पत्ते जल कर राख हो जाते हैं—

जेहि पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥[1]

ऐसा दुर्भाग्य है उस का ! सब दुःख के कारण से गई है—

जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी॥[2]

पेड़ भी उस से प्रभावित हैं—

तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥[3]

परंतु नागमती के दुःख से क्या होता है ? रत्नसेन तो ऐसे देश में है जहाँ न सावन है और न हेमंत वसंत, न कोकिल या पपीहे हैं जिनसे प्रेरित होकर वह आए—

नहिं पावस ओहि देसरा; नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥[4]

§ ४—इस कारण वह बार-बार रोती है। सारी प्रकृति उसके विरह एवं रुदन से प्रभावित हो रही है। इस कारण—

आधी रात बिहंगम बोला।[5]

यह पक्षी कितनी सहानुभूति से भरा हुआ है। वह पूछता है—

तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी ?॥[6]

कवि इस का उत्तर देता है—

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही पृष्ठ १८१
६ वही

नागमती कारन कै रोई। का सोवै जो कंत-बिछोई ॥[1]

नागमती भी कहती है—

कोइ न जाइ ओहि सिंघल दीपा। जेहि सेवाति कहँ नैना सीपा ॥
जोगी होइ सो निसरा नाहू। तब हुँत कहा सँदेस न काहू ॥[2]

यहाँ पर द्रष्टव्य यह है कि नागमती अपनी दुख की बात क्रमिक रूप से नहीं कहती। पंछी क्या समझ सकेगा, इस का ध्यान ही उसे नहीं है। वास्तव में विरह में वह इतनी डूबी हुई है कि उसे इन बातों का ध्यान नहीं रह सकता है। वह इतना ही चाहती है—

चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँ ं स। टेक
कहउँ बिरह दुख आपन, सुनहु दँड बैठि एक ॥[3]

उसे इतना होश है कि जिस के हृदय में सहानुभूति न हो उस से अपनी बात नहीं कहनी चाहिए—

तासौं दुख कहिए हो बीरा। जेहि सुनि कै लागै पर-पीरा ॥[4]

वह अपनी मनोकामना स्पष्ट रूप से उस के सामने रखती हुई वचन देती है—

कथा जो कहै आइ ओहि केरी। पाँवरि होउँ, जनम भरि चेरी ॥[5]

क्योंकि नागमती तो उस का स्मरण करते-करते स्वयं माला के समान कृश देह हो गई है—

ओहि के गुन सँवरत भइ माला। अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला ॥[6]

वह इतनी बात ही कह पाती है। अधिक वह कहे भी तो कैसे—

हाड़ भए सब किँगरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौं कथा केहि भाँति ? ॥[7]

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही

नागमती यह शब्द कह रही है ! उस का विरह उसे इतनी करुण दशा में ले जाता है । यह स्थिति वास्तव में सारे साहित्य में दुर्लभ है । नागमती अपने मन की इस असाधारण उक्ति को मनोवैज्ञानिक कारण द्वारा समझाती है—

सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कन्त जेहि हाथ ।[1]

नागमती रत्नसेन से इतना अधिक प्रेम करती है, यह पाठक को पहले कहीं पर भी नहीं मिलता और न इस के बाद । बारहमासे में विरह वर्णन का यह चरम बिन्दु है ।

इस के पश्चात नागमती रत्नसेन के लिए संदेश कहती है । परंतु उस में उस के निजी दुःखों की कोई भी बात नहीं है । वह बतलाती है—

रतनसेन कै माइ सुरसती । गोपीचँद जसि मैनावती ॥
आँधरि-बूढ़ि होइ दुख रोवा । जीवन रतन कहाँ दहुँ खोवा ॥[2]

माता की कितनी करुण दशा है ! नागमती उस पंछी से कहलवाना चाहती है—

जीवन अहा लीन्ह सो काढ़ी । भइ बिनु टेक, करै को ठाढ़ी ? ॥[3]

इस प्रकार नागमती मां के दुख की बात कहती है । परंतु रत्नसेन से अपने दुख का एक शब्द भी नहीं कहती । उस का विरह उस प्रणय का विरह है जो स्वयं जलना जानता है, दूसरे तक उस की लपट नहीं पहुँचने देना चाहता । परंतु उस का प्रभाव ध्यान देने योग्य है—

लेइ सो संदेस बिहंगम चला । उठी आगि सगरौं सिंघला ॥
बिरह-बजागि बीच को ठेघा ? । धूम सो उठा साम भए मेघा ॥
भरिगा गगन लूक अस छूटे । होइ स नखत आइ भुइं टूटे ॥
जहँ जहँ भूमि जरी भा रेहू । बिरह के दाघ भई जनु खेहू ॥
राहु केतु, जब लंका जरी । चिनकी उड़ी चाँद महँ परी ॥

[1] वही

[2] वही

[3] वही

जाइ विहंगम समुद डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा॥
दाधे वन बीहड़, जल सीपा। .... ॥[1]

रत्नसेन ने जब वह संदेश सुना तो उस पर भी प्रभाव पड़ा। वह उस पंछी से कहता है—

पंखि! आँख तेहि मारग लागी सदा रहाहिं।
कोइ न सँदेसी आवहिं, तेहि क सँदेस कहाहिं॥[2]

और झूठ बोलकर सिंहल से चित्तौर की ओर चलता है।

§ ५—चित्तौर आने पर नागमती अपने विरह की सारी व्यथा रत्नसेन से एक ही दोहे में कह देती है—

काह हँसौ तुम मोसौं, किएउ और सौं नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, मोहिं मुख बरसै मेह॥[3]

विरह की जैसी तीखी व्यंजना इस दोहे में है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

§ ६—पद्मावती नागमती विलाप खण्ड में अलाउद्दीन द्वारा रत्नसेन के बांध लिए जाने पर कवि ने नागमती का विरह वर्णन फिर दिया है। परंतु वह चित्र इतना उज्जल नहीं है जितना कि वियोग खंड एवं संदेश खंड का है।

नागमती की दशा कवि बतलाता है—

नागमतिहिँ 'पिय पिय' रट लागी। निसि दिन तपै मच्छ जिमि आगी॥[4]

वह पुकार कर कहती है—

भँवर, भुँजंग कहाँ, हो पिया। हम ठेघा, तुम्ह कान न दिया॥[5]

वह इस भँवर के उपमान को आगे बढ़ाकर कहती है—

भूलि न जाहिं कँवल के पाहाँ। बाँधत बिलँब न लागै नाहा॥[6]

और जब कमल ने भौंरे को अपने कोष में बंद कर लिया तब तो

[1] वही पृष्ठ १८३
[2] वही पृष्ठ १८४
[3] वही पृष्ठ २१७
[4] वही पृष्ठ २०१
[5] वही
[6] वही

सूर्य ही उसे छुड़ा सकता है। इसी कारण नागमती कहती है—

कहाँ सो सूर पास हौं जाऊँ। बाँधा भँवर छोरि कै लाऊँ॥

कहाँ जाउँ, को कहै सँदेसा?। जाउँ सो तहाँ जोगिनि कै भेसा॥[1]

वह बिलकुल तैयार है—

फारि पटोरिहि, पहिरौं कंथा। जौं मोहिं कोउ दिखावै पंथा॥[2]

वह तो इस के लिए भी तैयार है कि—

वह पथ पलकन्ह जाइ बोहारौं। सीस चरन कै तहाँ सिधारौं॥[3]

कवि उस की दशा का वर्णन करता है—

रोवत भई, न साँस सँभारा। नैन चुवहिं जस ओरति-धारा॥[4]

नागमती कहती भी है—

जाकर रतन परा पर हाथा। सो अनाथ किमि जीवै, नाथा!॥[5]

सच है, नागिनी अपना मणि खो देने पर जीवित नहीं रहती। वह अपनी दशा और वर्णित करती है—

रही न जोति नैन भए खीने। स्रवन न सुनौं, बैन तुम्ह लीन्हे॥
रसनहिं रस नहिं एकौ भावा। नासिक और बास नहिँ आवा॥
तचि तचि तुम्ह बिनु अँग मोहि लागे। पाँचौ दगधि बिरह अब जागे॥[6]

कवि भी कहता है—

पिय बिनु ब्याकुल बिलपै नागा। बिरहा-तपनि साम भए कागा॥[7]

वह कहती है—

पवन पानि कहँ सीतल पीऊ?। जेहि देखे पलुहे तन जीऊ॥
कहँ सो बास मलय गिरि नाहा। जेहि कल परति देत गल बाहाँ॥[8]

और वह पद्मावती को अपने विरह में व्याकुल होकर बुरा-भला

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही पृष्ठ २०२
[7] वही
[8] वही

कह देती है—

पद्मिनि ठगनी भइ कित साथा ।[1]

क्योंकि

जेहिँ तें रतन परा पर-हाथा ।[2]

वह प्रिय को फिर बुलाती है—

होइ बसंत आवहु पिय केसरि । देखे फिर फूलै नागेसरि ॥
तुम्ह बिनु, नाह ! रहै हिय तचा । अब नहिं बिरह गरुड़ सौं बचा ॥
अब अँधियार परा, मसि लागी । तुम्ह बिनु कौन बुझावै आगी? ॥[3]

वह मन ही मन सोचती हुई विषाद भरे स्वर में कहती है—

नैन, स्रवन, रस रसना सबै खीन भए, नाह ।
कौन सो दिन जेहि भेंटि कै आइ करै सुख-छाँह ॥[4]

और नागमती सुख की छांह नहीं पाती ।

§ ७—कवि ने अंतिम दृश्य में नागमती का सती होना दिखलाया है। वहां पर कवि कितने मार्मिक स्वर में नागमती के मुख से कहलाता है—

आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़ ।
आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़ ॥[5]

परलोक में मिलन के स्वप्न से भरी यह उन्मत्त विरहिणी आगे कहती है—

जियत, कंत ! तुम्ह हम्ह गर लाई । मुए कंठ नहिं छोड़हिँ साईं ॥
औ जो गाँठि, कन्त ! तुम्ह जोरी । आदि अंत लहि जाइ न छोरी ॥
यह जग काह जो अछहि न आथी । हम तुम, नाह ! दुहूँ जग साथी ॥[6]

§ ८—पद्मावती-रत्नसेन विरह वर्णन के स्थल पद्मावती में दो प्रकार के हैं—

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही पृष्ठ ३३९
[6] वही पृष्ठ ३४०

(१) जहाँ पर पद्मावती के विरह का वर्णन है
(२) जहाँ पर रत्नसेन के विरह का वर्णन है

पद्मावती के विरह-वर्णन वाले अंश निम्न लिखित हैं—

(१) पद्मावती वियोग खंड[1]
(२) राजा गढ़ छेंका खंड[2]
(३) गंधर्वसेन मंत्री खंड[3]
(४) रत्नसेन शूली खंड[4]
(५) पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड[5]
(६) लक्ष्मी समुद्र खंड[6]
(७) पद्मावती नागमती विलाप खंड[7]
(८) पद्मावती गोरा बादल संवाद खंड[8]
(९) पद्मावती मिलन खंड[9]
(१०) पद्मावती नागमती सती खंड[10]

§९—पद्मावती को रत्नसेन के योग ने ही विरहिणी बना दिया था—

पदमावति तेहि जोग संजोगा। परी पेम बस गहे वियोगा॥[11]

और पद्मावती के विरह की लम्बी कहानी टूटती हुई राजा के योग धारण करने के बाद से उस के सती होने तक चलती है। इस लम्बी कहानी को हम निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) रत्नसेन दर्शन से पहले का विरह[12]

[1] वही पृष्ठ ८२-८५
[2] वही पृष्ठ १०७-११६
[3] वही पृष्ठ ११७-१२५
[4] वही पृष्ठ १२६-१३६
[5] वही पृष्ठ १४६-१६५
[6] वही पृष्ठ २०१-२१३
[7] वही पृष्ठ ३००-३०२
[8] वही पृष्ठ ३१६-३१९
[9] वही पृष्ठ ३३३-३३६
[10] वही पृष्ठ ३३९-३४०
[11] वही पृष्ठ ८२
[12] इस में निम्न लिखित खंड आएगा—
पद्मावती वियोग खंड

कि सिंह के डर से वे मृग भाग जाएं।

इसी प्रकार की व्यथा से वह सारा रात जागा करती है—

ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै।[1]

कवि उस की व्यथा का कैसा सशक्त एवं सजीव चित्रण करता है -

ले धनि बिरह-पतंग भइ, जरा चहै तेहि दीप।
कंत न आव भिरिंग होइ, का चन्दन तन लीप ? ॥[2]

धाय पूछती है—कि जहाँ कोई भी नहीं जा सकता वहाँ कौन आ गया ?

पौन न पावै संचरै, भौंर न तहाँ बईठ।
भूलि कुरंगिनि कस भई, जानु सिंघ तुइँ डीठ ॥[3]

पद्मावती इस का उत्तर शीघ्र देती है—कि अगर सिंह ही उसे मार कर खा जाता तो भी भला होता

धाय ! सिंह बरु खातेउ मारी। की तसि रहति अही जस बारी ॥[4]

वह यह भी कहती है—

जोबन सुनेउँ कि नवल बसंतू। तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू ॥
अब जोबन-बारी को राखा। कुंजर-बिरह बिधंसै साखा ॥
मैं जानेउँ जोबन रस भोगू। जोबन कठिन सँताप बियोगू ॥
जोबन गरुअ अपेल पहारू। सहि न जाइ जोबन कर भारू ॥
जोबन अस मैमंत न कोई। नवैं हस्ति जौं आंकुस होई ॥
जोबन भर भादौं जस गंगा। लहरैं देइ, समाइ न अंगा ॥
परिउँ अथाह, धाय ! हौं जोबन-उदधि गँभीर।
तेहि चितवौं चारिहु दिसि जो गहि लावै तीर ॥[5]

धाय समझाती है—कि यौवन को संयम के वश में रखना

[1] वही
[2] वही
[3] वही पृ० ८२
[4] वही
[5] वही

चाहिए। उस के वश में होकर विवेक नहीं खोना चाहिए

जोबन-तुरी हाथ गहि लीजिय। जहाँ जाइ तहाँ जान न दीजिय॥
जोबन जोर मात गज अहै। गहहु ज्ञान-आँकुस जिमि रहै॥[1]

परन्तु पद्मावती विवश है—वह काशी करवट के लिए तैयार है लेकिन उस से यह विरह नहीं सहा जाता—

करवत सहौं होत दुइ आवा। सहि न जाइ जोबन कै दावा॥[2]

स्पष्ट है कि इस विरह में विरहिणी के विरह की पावनता नहीं वरन कामुकता ही है।

§ ११—रत्नसेन दर्शन के बाद विरह का रूप बदल जाता है। वह रत्नसेन के लिए एकदम पागल नहीं हो उठती वरन अपने को बड़ा सम्हालकर आगे बढ़ाती है। मंडप में मिलकर वह एकदम आत्म समर्पण नहीं कर देती। पत्रोत्तर देते समय वह हीरामन से कहती है—

हौं जानति हौं अबही काँचा। ना वह प्रीति रंग थिर राँचा॥[3]

न तो कवि ने यहां उस के विरह वर्णन किया है और न पद्मावती ने ही अपने पत्र में ही विरह की कोई बात लिखी। परन्तु राजा जब गढ़ में चढ़ते हुए पकड़ा गया तो पद्मावती अपने को न रोक सकी—

परगट ढारि सकै नहिं आँसू। घटि घटि माँसु गुपुत होइ नासू॥
जस दिन माँझ रैनि होइ आई। बिगसत कँवल गएउ मुरझाई॥[4]

कवि और आगे कहता है—

राता बदन गएउ होइ सेता। भँवत भँवर रहि गए अचेता॥
चित्त जो चिन्ता कीन्ह धनि, रोवै रोवँ समेत।
सहस साल सहि, आहि भरि, मुरुछि परी, ना चेत॥[5]

और विरह के कारण उस की दशा 'मरणावस्था' तक पहुँच गई।

[1] वही

[2] वही पृष्ठ ८४

[3] वही पृष्ठ ११२

[4] वही पृष्ठ १२०

[5] वही

कवि उस का वर्णन करता है—

जोवहिँ साँस खिनहि खिन सखी। कब जिउ फिरै पौन-पर पँखी ॥
बिरह काल होइ हिए पईठा। जीउ काढ़ि लै हाथ वईठा ॥
खिनहि मौन बाँधे, खिन खोला। गही जीभ मुख आव न बोला ॥
खिनहिँ वेभ्कि कै बानन्ह मारा। कँपि कँपि नारि मरै बेकरारा ॥
कैसेहु बिरह न छाँड़ै, भा ससि गहन गरास।
नखत चहूँदिसि रोवहिं अंधर धरति अकास ॥[1]

और चेतना आने पर भी स्थिर रूप से चेतन नहीं रह सकती। वह डूब उतरा रही है—

खिनहिँ उठै, खिन बूड़ै, अस हिय कँवल सँकेत।
हीरामनहिँ बुलावहि, सखी! गहन जिउ लेत ॥[2]

उस के इस विरह में हीरामन औपधि के समान है। कवि हीरामन के आगमन के विपय में कहता है—

जनहु वैद ओषद लेइ आवा।[3]

हीरामन से वह कहती है—

कँवलहिं विरह-बिथा जस बाढ़ी। केसर-बरन पीर हिय गाढ़ी ॥
कित कँवलहिं भा पेम-अँकूरू। जौं पै गहन लेहि दिन सूरू ॥
पुरइनि-छाँह कँवल कै करी। सकल बिथा सुनि अस तुम हरी ॥
पुरुप गँभीर न बोलहिँ काहू। जो बोलहिं तौ और निबाहू ॥[4]

और आगे तो वह बोल ही नहीं सकी। इतना कहते कहते वह अचेत हो गई—

एतनै बोल कहत मुख पुनि होइ गई अचेत।
पुनि को चेत सँभारै? उहै कहत मुख सेत ॥[5]

[1] वही पृष्ठ १२१
[2] वही पृष्ठ १२२
[3] वही
[4] वही
[5] वही

और वह अचेतनता बड़ी असाधारण है। कवि हमें बतलाता है कि मलय गिरि के चंदन और सागर का सारा नीर उस विरह की आग को नहीं बुझा सकता—

जहँ लगि चंदन मलयगिरि औ सायर सब नीर।
सब मिलि आइ बुझावहिँ, बुझै न आगि सरीर॥[1]

पद्मावती स्वयं भी कहती है—

मूरि सजीवन दूरि है सालै सकती-बानु।
प्रान मुकुत अब होत है, बेगि देखावहु भानु॥[2]

और वह प्रतिज्ञा करती है कि वह रत्नसेन के बिना नहीं रह सकती। स्वयं उसे चाहे कुछ हो जाए परंतु वह रत्नसेन को कुछ न होने देगी—

जौं रे जियहि मिलि गर रहहिं, मरहिं तो एकै दोउ।
तुम जिउ कहँ जिनि होइ किछु, मोहिं जिउ होउ सो होउ॥[3]

पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में पद्मावती रत्नसेन से अपने विरह की बात बतलाती है कि वह मछली और चातकी के समान विकल थी—

बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातकि भइउँ कहत पिउ पीऊ॥[4]

और दीपक और सीप की भाँति दुखी थी—

जरिउँ बिरह जस दीपक-बाती। पंथ जोहत भइ सीप सेवाती॥[5]

वह कोयल और चकोर भी हो गई थी। उसे रात रात भर नींद नहीं आती थी—

डाढ़ि डाढ़ि जिमि कोइल भई। भइउँ चकोर नींद निसि गई॥[6]

इस विरह का कारण भी वह बतलाती है—

[1] वही पृष्ठ १२३
[2] वही पृष्ठ १२४
[3] वही पृष्ठ १२५
[4] वही पृष्ठ १५७
[5] वही
[6] वही

तोरे पेम पेम मोहिँ भयऊ।[1]

§ १२—इस के पश्चात जिस विरह का चित्र कवि ने दिया है वह विवाह के बाद का है। उस की पृष्ठ भूमि यह है कि रत्नसेन और पद्मावती एक बार मिल चुके हैं और दोनों साथ साथ एक वर्ष[2] से अधिक समय व्यतीत कर चुके हैं। उन्हें अलग पहली बार तो भाग्य करता है।[3] पद्मावती रत्नसेन के प्रेम में इतनी पगी हुई है कि—

काया-उदधि चितव पिउ पाहाँ। देखौं रतन सो हिरदय माहाँ॥
जनहुँ आहि दरपन मोर हीया। तेहि महँ दरस देखावै पीया॥[4]

वह यह तो मानती है कि वह आँखों में पास ही है

नैन नियर[5]

परंतु कठिनाई दूसरी है कि वहाँ पहुँचना कठिन है

पहुँचत सुठि दूरी[6]

और इसी कारण वह अभी तक उस के विरह में मरणावस्था को प्राप्त हो रही है

अब तेहि लागि मरौं मैं झूरी॥[7]

उसे बड़ी व्यग्रता है कि प्रिय तो हृदय में ही हैं परंतु कोई उन से मिलाता नहीं है—

पिउ हिरदय महँ, भेंट न होई। को रे मिलाव, कहौं केहि रोई?॥[8]

और उस के विरह-अश्रु सस्वर होकर तीव्र वेदना की वाणी में

[1] वही

[2] जायसी ने पद्मावती का सुखकर षटऋतु वर्णन किया है। इस से साबित होता है कि रत्नसेन वहां पर एक वर्ष रहा था।

[3] वास्तव में भाग्य तो पद्मावती के दृष्टि कोण से है। कवि तो इस का कारण रत्नसेन का लोभ बतलाता है।

[4] वही पृष्ठ २०२

[5] वही

[6] वही

[7] वही

[8] वही

अपने प्राणों से कहते हैं—

साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरबाहि।
जौ जिउ जारे पिउ मिलै, भेंटु रे जिउ! जरि जाहि ॥[1]

वह सती होने के लिए तैयार हो जाती है। और उस के इस रुदन को सुनकर पंछी भी विमोहित हो जाते हैं—

रोवत पंखि विमोहे[2]

कवि दृष्टांत देकर इस उक्ति को अधिक काव्यात्मक बनाता है—

जस कोकिला-अरंभ[3]

और रुदन में पद्मावती ने बड़े ही मार्मिक शब्द भी कहे थे! व्यथा की मूर्ति बनकर उसने कहा था कि वह पागल होकर पड़ी है जिस घाट पर प्रिय हैं कोई उसी घाट की ओर उसे बहा दे—

बाउरि होइ परी पुनि पाटा। देहु बहाइ कंत जेहि घाटा ॥[4]

और कोई मेरे लिए चिता सजा दे—

को मोहि आगि देइ रचि होरी। जियत न बिछुरै सारस जोरी ॥[5]

और जिसे विरह सता रहा हो उसे तो मृत्यु ही भली होती है—

जेहि सिर परा बिछोहा, देहु ओहि सिर आगि।
लोग कहैं यह सर चढ़ी, हौं सो जरौं पिउ लागि ॥[6]

इस घटना के बाद दो विरह वर्णन कवि ने और दिए हैं। पहला उस समय का है जब कि रत्नसेन को अलाउद्दीन बाँधकर दिल्ली ले गया है। पद्मावती जानती है कि उस के मूल में वह स्वयं है। कवि बतलाता है—

पदमावति बिनु कन्त दुहेली। बिनु जल कँवल सूखि जस बेली ॥[7]

[1] वही पृष्ठ २०३

[2] वही

[3] वही

[4] वही पृष्ठ २०२

[5] वही

[6] वही

[7] वही पृष्ठ ३००

वह कहती है कि उन्होंने मुझ से तो प्रेम किया और स्वयं दिल्ली में निश्चिन्त हैं—

गाढ़ी प्रीति सो मोसौं लाए। दिल्ली कंत निचिँत होइ छाए ।।[1]

और वह दिल्ली भी कैसी है—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। काइ न बहुरा कहै सँदेसू ।।
जो गवनै सो तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान सोई ।।[2]

कितने करुण शब्दों में वह कहती है—

कुवाँ धार जल जैस बिछोवा। डोल भरे नैनन्हि धनि रोवा ।।
लेजुरि भई नाह बिनु तोही। कुवाँ परी, धरि काढ़सि मोहीं ।।
नैन-डोल भरि ढारै, हिए न आगि बुझाइ।
घरी घरी जिउ आवै, घरी घरी जिउ जाइ ।।[3]

व्यथा की साकार प्रतिमा का-सा आभास इन शब्दों में मिलता है—

नीर गँभीर कहाँ,हो पिया !। तुम्ह बिन फाटै सरवर-हिया ।।[4]

वास्तव में पानी न रहने पर सरोवर की मिट्टी फट जाती है।

चरत जो पंखि केलि कै नीरा। नीर घटे कोइ आव न तीरा ।।[5]

पानी घटने पर वे पक्षी जो पहले यहां विचरा करते थे, दूर चले गए और अब तीर पर नहीं आते।

कँवल सूख, पखुरी बेहरानी। गलि गलि कै मिलि छार है रानी ।।[6]

कमल सूख गया, उस की पंखुरियां निखर गईं और अब वे गल-गलकर मिट्टी में ही खो गई हैं। कंचन जैसे शरीर में विरह की रेत मली गई है, सोना घिस घिसकर मिट्टी में मिल गया है। शरीर अत्यंत कृश हो गया है—

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही

विरह-रेत कंचन तन लावा । चून चून, कै खेह मेरावा ॥[१]

और जो सोना कण-कण बनकर बिखर गया है उसे प्रिय के बिना और कौन समेट सकता है—

कनक जो कन कन होइ वेहराई । पिय कहँ ? छार समेटै आई ॥[२]

इसी कारण वह प्रिय से प्रार्थना करती :—

अबहुँ जियावहु कै मया, बिथुरी छार समेट ।
नइ काया, अवतार नव होइ तुम्हारे भेंट ॥[३]

कवि स्वयं पद्मावती के विरह का अत्यंत मार्मिक वर्णन दे रहा है—

नैन-सीप, मोती भरि आँसू । टुटि टुटि परहिँ, करहिं तन नासू ॥[४]

और

सँग लेइ गएउ रतन सब जोती । कंचन-कया काँच कै पोती ॥[५]

लक्ष्मी समुद्र खंड की भाँति पद्मावती यहां पर भी कहती है—

कौन खंड हौं हेरौं, कहाँ बँधे हौ, नाह ।
हेरे कतहुँ न पावौं, बसै तु हिरदय माहँ ॥[६]

वह गोरा बादल से भी कहती है—

रतन के रङ्ग नैन पै वारौं । रती रती कै लोहू ढारौं ॥
भँवरा ऊपर कँवल भँवावौं । लेइ चलु तहाँ सूर जहँ पावौं ॥
हिय कै हरदि, बदन कै लोहू । जिउ बलि देउँ सो सँवरि बिछोहू ॥[७]

वह कितने करुण शब्दों में कहती है—

दुख बिरखा अब रहै न राखा । मूर पतार, सरग भइ साखा ॥

[१] वही
[२] वही
[३] वही
[४] वही
[५] वही पृष्ठ २०१
[६] वही
[७] वही पृष्ठ २१६

§ १७—पहले उपभाग में निम्न लिखित स्थल आते हैं—

(१) प्रेम खंड
(२) जोगी खंड
(३) राजा गजपति संवाद खंड
(४) बोहित खंड
(५) सात समुद्र खंड
(६) सिंहलद्वीप खंड
(७) पद्मावती सुआ भेंट खंड

इन स्थलों में वर्णित विरह की पृष्ठभूमि में पद्मावती का गुण श्रवण मात्र है। न तो रत्नसेन ने पद्मावती को देखा ही है और न उसे यह ही मालूम है कि पद्मावती उस के प्रणय को स्वीकार करेगी या ठुकराएगी। हीरामन जैसे ही पद्मावती का नखशिख वर्णन समाप्त करता है कि

सुनतहि राजा गा मुरझाई। जानौं लहरि सुरुज कै आई ॥[1]

विरह चक्कर खिला रहा है—

विरह भौंर होइ भांवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई ॥[2]

उस के मुख से 'त्राहि त्राहि' मात्र निकलता है—

एतनै बोल आव मुख, करैं "तिराह तिराह"।[3]

इस विरह में राजा इतना लीन हो गया था कि होश आने पर रो उठा और कह उठा कि उस ने जैसे अपना ज्ञान खो दिया है—

आवत जग बालक जस रोआ। उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोआ' ॥[4]

और राज्य छोड़कर योगी हो गया—

तजा राज, राजा भा जोगी।[5]

रत्नसेन विरह के एक ऐसे वातावरण में बँध गया कि वह उस के

[1] वही पृष्ठ ५६
[2] वही
[3] वही
[4] वही पृष्ठ ५७
[5] वही पृष्ठ ६०

बाहर रखी हुई कोई भी चीज़ न तो देख ही पाता था और न देखना ही चाहता है। मा कहती है—

बिलसहु नौ लख लच्छि पियारी।[१]

वह उत्तर देता है—

मोहिँ यह लोभ सुनाव न माया।[२]

गजपति से भी वह कहता है—

जौं रे जिऔं तो बहुरौं, मरौं त ओहि के बार॥[३]

विरह ने उसे इतना दृढ़ बना दिया है कि वह समुद्र से तनिक भी भयभीत नहीं है। वह स्पष्ट कहता है कि वह पद्मावती को प्यार करता है उसे और कुछ नहीं सूझता—

हौं पद्मावति कर भिखमंगा। दीठि न आव समुद औ गंगा॥[४]

और अब प्रेम समुद्र में पड़ गया है—

अब एहि समुद परेउँ होइ मरा। मुए केर पानी का करा?।[५]

विरही राजा दार्शनिक-सा हो उठता है—

मोहिँ कुसल कर सोच न ओता। कुसल होत जौं जनम न होता॥
धरती सरग जाँत-पट दोऊ। जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ॥[६]

सात समुद्र खंड में राजा कैसा दृढ़ होकर आगे बढ़ता जा रहा है। समुद्र की गंभीर भयंकरता उस की दृढ़ता का बाल-बांका भी नहीं कर पाती। वह दृढ़ता से कहता है कि वह न स्वर्ग चाहता है और न नरक से उसे कोई प्रयोजन है। वह तो पद्मावती के दर्शन मात्र चाहता है—

ना हौं सरग क चाहौं राजू। ना मोहिँ नरक सेंति कछु काजू॥
चाहौं ओहि कर दरसन पावा। जेइ मोहिँ आनि पेम-पथ लावा॥[७]

[१] वही पृष्ठ ६१
[२] वही पृष्ठ ६२
[३] वही पृष्ठ ६७
[४] वही पृष्ठ ६८
[५] वहीं
[६] वही पृष्ठ ७१
[७] वही पृष्ठ ७५

सिंहल द्वीप पहुँचने पर हीरामन बताता है कि पद्मावती जहाँ ऊँचे महल में रहती है वहाँ कोई नहीं ... । यथा—

पौन न जाइ, न पंखी जाना ।[1]

राजा का विरह इतना तीव्र है कि वह कहता है —

...सूरज औ पावौं । पवन पाइ, गगन कहँ धावौं ।।[2]

हीरामन रत्नसेन के विरह का वर्णन पद्मावती से करता है —

जिन्हहिं नरक, जिन जाइ पतारा । फिर न रहै पुहि खाति पसारा ।।[3]

×   ×

सुलगि सुलगि भीतर होइ सावाँ । परगट होइ न कहै दुख नावाँ ।।[4]

×   ×

सूरज सुरुज दरस के ताईं । चितवै चंद चकोर की नाईं ।।[5]

×   ×

कहा कहौं ओहि सौं जेइ दुख कीन्ह निमेट ।
तेहि दिन आगि करै वह (बाहर) जेहि दिन होइ सो भेंट ।।[6]

§ १८—पद्मावती की स्वीकृति के पहले राजा के विरह की यहाँ स्पष्टता है । उस में गंभीरता और दृढ़ता है । पद्मावती की स्वीकृति मिलने पर यह विरह विशेष परिलक्षित नहीं होता । उस ... निम्नलिखित खंडों में मिलता है—

(१) राजा रत्नसेन सती खंड
(२) पार्वती महेश खंड
(३) राजा गढ़ छेका खंड
(४) रत्नसेन सूली खंड
(५) पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड

[1] वही पृष्ठ ७८
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ८८
[4] वही
[5] वही पृष्ठ ८७
[6] वही पृष्ठ ८८

इस विरह वर्णन की पृष्ठभूमि में दो बातें स्मरणीय हैं। पहली तो यह कि राजा रत्नसेन को यह खबर मिल चुकी है कि पद्मावती भी उस से प्रेम करती है; और दूसरी बात यह कि राजा पद्मावती के दर्शन कर चुका है। हीरामन ने पद्मावती के सौन्दर्य की जो रूप रेखा उस के सामने रखी थी उसे वह स्वयं परख चुका है।

पद्मावती को देखते ही वह बेहोश हो गया था। वह सती खंड में होश में आता है और देखता है—

फूल झरे, सूखी फुलवारी। दीठि परी उकठी सब बारी ॥[1]

वह बड़े आश्चर्य में है कि किस ने यह बसंत उजाड़ दिया है—

केइ यह बसत बसंत उजारा ?। गा सो चाँद, अथवा लेइ तारा ॥[2]

वह देखता है कि उस के हृदय पर चंदन से कुछ लिखा हुआ है—

हिए देख तब चंदन खेवरा, मिलि कै लिखा बिछोव।[3]

इस से वह

जल बिछोह जस मीन दुहेला। जल हुँत काढ़ि अगिनि महँ मेला ॥[4]

वह पागल हो उठता है—

कहाँ बसंत औ कोकिल-बैना। कहाँ कुसुम अति बेधा नैना।
कहाँ सो मूरति परी जो डीठी। काढ़ि लिहेसि जिउ हिए पईठी ॥
कहाँ सो देख दरस जेहि लाहा ?। जौं सुबसंत करीलहि काहा ?॥[5]

इसी व्यग्रता में वह कह उठता है—

अरे मलिछ बिसवासी देवा। कित मैं आइ कीन्ह तोरि सेवा ॥[6]

वह मूर्ति-पूजा का खुलकर खंडन करता है—

पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सो ऐसे बूड़े मझ धारा ॥
पाहन सेवा कहाँ पसीजा ?। जनम न ओद होइ जौं भीजा ॥

[1] वही पृष्ठ ९८
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही पृष्ठ ९९
[6] वही

बाउर सोइ जो पाहन पूजा। सकत को भार लेइ सिर दूजा ॥[1]

उस के विरह में इतनी गहराई है कि वह पार्वती से कहता है—

हौं कविलास काह लै करऊँ ?। सोइ कविलास लागि जेहि मरऊँ ॥[2]

गंधर्वसेन के नौकरों से भी वह कहता है—

अब धर इहाँ जीउ ओहि ठाऊँ। भसम होउँ बरु तजौं न नाऊँ ॥[3]

विरह में वह मरणावस्था को भी प्राप्त हो उठता है—

कहाँ पिंगला सुखमन नारी। सूनि समाधि लागि गइ तारी ॥[4]

शूली खंड में भी—

आसन लेइ रहा होइ तपा। 'पदमावति पदमावति' जपा ॥[5]

पद्मावती से भेंट होने पर वह कहता है—

मैं तुम्ह कारन, पेम-पियारी ! राज छाँड़ि कै भएउँ भिखारी ॥[6]

परन्तु स्मरणीय यह है कि राजा ने यहाँ पर पद्मावती से अपने प्रेम की जो बातें कही है वे विशेष मार्मिक नहीं है।

§ १६—विवाह के पश्चात विरह का वर्णन लक्ष्मी समुद्र खंड में मिलता है। राजा घाट पर लगने के बाद होश आने पर कहता है—

मरौं सो लेइ पदमावति नाऊँ।[7]

और

पदमावति जग रूपमनि, कहँ लगि कहौं दुहेल।
तेहि समुद महँ खोएउँ, हौं का जिएउ अकेल ॥[8]

लक्ष्मी से वह कहता है—

मैं हौं सोइ भँवर औ भोजू। लेत फिरौं मालति कर खोजू ॥[9]

[1] वही
[2] वही पृष्ठ १०३
[3] वही पृष्ठ १०८
[4] वही पृष्ठ ११४
[5] वही पृष्ठ १२७
[6] वही पृष्ठ १५२
[7] वही पृष्ठ २०६
[8] वही पृष्ठ ०७
[9] वही पृष्ठ २०९

कहना न होगा कि राजा का यह विरह मार्मिक तो अवश्य है परन्तु पहले जैसा अति मार्मिक नहीं है।

रत्नसेन के हृदय में नागमती के लिए कभी विशेष विरह नहीं व्यापा था। संदेश पाने पर अवश्य पंछी से उस ने कहा था—

पंखि! आँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहिँ।
काइ न सँदेसी आवहिँ, तेहि क सँदेस कहाहिँ॥[1]

और लौटने पर नागमती से भी कहा था

नागमती तू पहिल बियाही। कठिन बिछोह दहै जस दाही॥[2]

परंतु पाठक को रत्नसेन के इन शब्दों पर विशेष विश्वास नहीं होता है।

§ २०—संक्षेप में जायसी के विरह वर्णन की यही रूप रेखा है। नागमती और पद्मावती के विरह को कवि ने लगभग एक ही स्तर का चित्रित किया है। उन में कोई मौलिक अंतर नहीं है। यद्यपि नागमती और पद्मावती की सत्ता में मौलिक अंतर मौजूद है। वह अन्तर चरित्र चित्रण वाले परिच्छेद में दिखाया गया है। दूसरी बात यह कि जब रत्नसेन पहले सिंहल गया था तो नागमती की गोद सूनी थी परंतु जब वह दिल्ली गया है तो उस की गोद भरी हुई है। दोनों विरह वर्णनों में इस कारण व्यावहारिक जीवन के दृष्टि-कोण से अंतर होना चाहिए। वह भी हमें इसमें नहीं मिलता। कवि ने जहाँ पर भी विरह वर्णन दिया है वहाँ पर परिस्थितियाँ भूल-सा गया है। इस कारण प्रायः सभी विरह वर्णन लगभग समान-से हैं।

---

[1] वही पृष्ठ १८४ [2] वही पृष्ठ २१७

करुण

§ १—मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी कविता में करुण रस का उपयोग दो प्रकार से किया है—

(१) जहां पर करुण रस स्वतंत्र है

(२) जहां पर करुण रस किसी दूसरे रस की क्रोड़ में है

§ २—स्वतंत्र करुण रस का उपयोग भी कवि ने निम्नलिखित दो प्रकार से किया है—

(१) जहाँ पर करुण रस के आलंबन परंपरा के दृष्टिकोण से स्वतंत्र हैं

(२) जहां पर करुण रस के आलंबन परंपरा के दृष्टि कोण से स्वतंत्र नहीं वरन किसी दूसरे रस के हैं

§ ३—स्वतंत्र आलंबनों वाले स्वतंत्र करुण रस के प्रसंग संख्या में पर्याप्त हैं[१]। परंतु उन में प्रमुख स्थल दो ही हैं—

१—रत्नसेन के सिंहल गमन के अवसर पर कवि द्वारा उपस्थित किया गया चित्तौर का दृश्य[२]

२—रत्नसेन की सिंहल से विदाई के समय का कवि द्वारा उपस्थित किया गया सिंहल का दृश्य[३]

§ ४—जब रत्नसेन चित्तौड़ से सिंहल के लिए चलता है तो पहले उस की मां उस के सामने आती है। वृद्धा माता का करुणा पूर्ण हृदय अपने इकलौते बेटे को सात समुद्र पार जाते देखकर भर आता है। कवि कहता है—

[१] मान सरोवर खंड, सुआ खंड आदि पर्याप्त सर्गों में करुण रस विद्यमान है।

[२] जा० ग्रं० पृष्ठ ६०-६६ [३] वहीं पृष्ठ १८८-१९५

बिनवै रतनसेन कै माया ॥[1]

यहाँ पर 'बिनवै' शब्द ही पाठक के हृदय में करुणा जाग्रत कर देता है। वह माता होकर अपने पुत्र से विनय कर रही है। वह वात्सल्य भरे हृदय से कुछ बातें कहती है। जो वात्सल्य रस के अंतर्गत रखी जाएंगी।

फिर नागमती आती है। वह भी रोती हुई विनय करती है। परंतु वह भी व्यर्थ। तब कवि उस दृश्य का वर्णन करता है जब कि मां रो रही है, रानियां रो रही हैं और अपने बाल नोच रही हैं—

रोवत माय, न बहुरत बारा। रतन चला, घर भा अँधियारा॥
बार मोर जो राजहि रता। सो लै चला, सुआ परवता॥
रोवहिँ रानी तजहिँ पराना। नोचहिँ बार, करहिँ खरिहाना॥[2]

और कह रही हैं कि हमारे आभूषण व्यर्थ हैं, प्रिय के न रहने से इन्हें सजाकर क्या होगा? जब प्रिय ही चल दिया तो आज जीवन ही बेकार हो रहा है—

चूरहिँ गिउ अभरन, उर हारा। अब का पर हम करब सिंगारा?॥
जा कहँ कहहिँ रहस कै पीऊ। सोइ चला, काकर यह जीऊ॥
मरै चहहिँ, पै मरै न पावहिँ। उठै आगि, सब लोग बुझावहिँ॥[3]

परंतु ये बहुत देर तक ऐसे करुण समय में बोल भी तो नहीं सकती

घरी एक सुठि भएउ अँदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रोरा॥
टूटे मन नौ मोती, फूटे दस मन कांच।
लीन्ह समेटि सब अभरन, होइगा दुख कर नाच॥[4]

ऐसा करुण दृश्य है। माता रो रही है। पत्नियाँ रो रही हैं, चूड़ियाँ तोड़ रही हैं, बाल नोच रही हैं, गले के हार तोड़ रही हैं और आभूषणों को फेंक रही हैं। और राजा—

१ [illegible] २ [illegible]
३ [illegible] ४ [illegible]

निकसा राजा सिंगी पूरी। छाँड़ा नगर मेलि कै धूरी ॥[1]

जीवन के ये दो एक साथ रखे गए विषम दृश्य अपने आप में शोक पूर्ण हैं।

§ ५—रत्नसेन की सिंहल से विदाई का दृश्य भी करुण है। जैसे ही पद्मावती ने चलने की बात सुनी कि

उठा धसकि जिउ औ सिर धुना।[2]

यह सोचते ही कि यह सिंहल और महल छोड़ना पड़ेगा—

छाँड़ब यह सिंहल कविलासू।[3]

वह स्थिर न रह सकी—

गहबर नैन आए भरि आँसू।[4]

उसे दुख है कि नैहर छोड़ना पड़ रहा है और सखियां छूट रही है—

छाँड़िउँ नैहर चलिउं बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई ॥
छाँड़िउँ आपन सखी सहेली। दूरि गवन तजि चलिँउ अकेली ॥[5]

उसे इस का भी दुख है कि उस ने नैहर का सुख नहीं पाया—

नैहर आइ काह सुख देखा।[6]

यहाँ रहना तो जैसे सपने-सा बीत गया—

जनु होइगा सपने कर लेखा।[7]

पिता के कोमल स्नेह की भी उसे याद आती है। बचपन में कितने लाड़-प्यार से उस का पालन किया गया था! अब वह भी बिछुड़ रहा है—

राखत बारि सो पिता निछोहा। कित बियाहि अस दीन्ह बिछोहा ॥[8]

सखियों से रानी पद्मावती कितनी करुणा से भीगे स्वर एवं

[1] वही पृष्ठ ६३
[2] वही पृष्ठ १९०
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही

शब्दों में कहती है—

मिलहु सखी हम तहँवाँ जाहीं। जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं ॥[१]

वह अपने पिता की भी शिकायत करती है—

पिता न छोह कीन्ह हिय माहाँ। तहँ को हमहिँ राख गहि बाहाँ ॥[२]

और अपनी सखियों के स्नेह की प्रशंसा करती है—

तुम्ह अस हित संवती पियारी। जियत जीउ नहिं करौं निनारी ॥[३]

परंतु पद्मावती क्या करे! हिन्दू समाज है। पति का पत्नी पर पूर्णाधिकार है—

कंत चलाई का करौं, आयसु जाइ न मेंटि।
पुनि हम मिलहिँ कि ना मिलहिँ लेहु सहेली भेंटि ॥[४]

सखियाँ पद्मावती की इस आर्द्र वाणी को सुनकर रो पड़ीं—

धनि रोवत रोवहिँ सब सखी।[५]

वे कहती हैं कि जब तुम राजकुमारी होकर न रह सकीं तो हमारी कौन बिसात है—

तुम्ह ऐसी जो रहै न पाई। पुनि हम्ह काह जो आहिँ पराई ॥[६]

वे भी अपने पिता की बात कहती हैं—

आदि अंत जो पिता हमारा। ओहु न यह दिन हिए विचारा ॥[७]

दार्शनिक के-से स्वर में वे अपना निष्कर्ष बतलाती हैं कि नैहर में तो मेहमान का-सा रहना होता है—

औ हम देखा सखी सरेखा। एहि नैहर पाहुन के लेखा ॥[८]

हम तो पति के लिए बनाई गई हैं और बिना चलना सीखे उस के साथ चल देती हैं—

[१] वही
[२] वही
[३] वही
[४] वही
[५] वही
[६] वही
[७] वही
[८] वही पृष्ठ १९१

चालन कहँ हम अवतरीं, चलन सिखा नहिँ आय।
अब सो चलन चलावै को राखै गहि पाय ? ॥[1]

चलने के समय का दृश्य कवि ने दिया है। मा, पिता, भाई सब रो रहे हैं। सारा सिंहल रो रहा है। परंतु पति के आगे किसी का ज़ोर नहीं है—

रोवहिँ मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जो कंत चलाई॥
रोवहिँ सब नैहर सिंघला। लेइ बजाइ कै राजा चला॥
तजा राज रावन, का केहू ?। छाँड़ा लंक बिभीषन लेहू॥
भरीं सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सौं भएउ गुरेरा॥[2]

इस करुण वातावरण में कवि कहता है—

कोउ काहू कर नाहिँ निआना। मया मोह बाँधा अरुधाना॥
कंचन कया सो रानी रहा न तोला माँसु।
कंत कसौटी घालि कै चूरा गढ़ै कि हाँसु॥[3]

§ ६—दूसरे रसों में परंपरागत आलंबनों को लेकर कवि ने पद्मावती नागमती सती खंड में करुण रस की सुंदर सृष्टि की है। वहाँ पर आलंबन तो नागमती और पद्मावती हैं और प्रसंग भी रत्नसेन की मृत्यु का है। इस अवसर पर जो दृश्य कवि ने उपस्थित किया है वह पाठक के हृदय को शोक और आँखों को आँसुओं से भर देता है। कवि की लेखनी जैसे इसी स्थल पर सब से अधिक शक्तिमती हो उठी है। पहले वह पद्मावती का वर्णन करता है—

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी॥
सुरुज छपा रैनि होइ गई। पूनो ससि सो अमावस भई॥
छोरे केस मोति लर छूटीं। जानहु रैनि नखत सब टूटीं॥[4]

फिर नागमती और पद्मावती दोनों रानियों का वर्णन एक साथ

[1] वही
[2] वही पृष्ठ १९४
[3] वही
[4] वही पृष्ठ १३९

कवि कहता है—

नागमती पदमावति रानी । दुवौ महासत सती बखानी ॥
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं । औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी ॥[1]

चंदन की चिता बनाई गई और उस पर राजा को रखा गया—

चंदन अगर काठ सर साजा । औ गति देइ चले लेइ राजा ॥
बाजन बाजहिं होइ अगूता । दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता ॥[2]

और नागमती और पद्मावती का विलाप तो इस वातावरण को करुणा के चरम बिन्दु की ओर खींच लेता है । वे कहती हैं—

जियत कंत तुम हम्ह गर लाई । मुए कंठ नहिं छोड़हि साईं ॥
और जो गांठि कन्त तुम जोरी । आदि अंत लहि जाइ न छोरी ॥
यह जग काह जो अछहि न आथी । हम तुम्ह नाह दुहुँ जग साथी ॥[3]

और कवि का यह कथन

रानीं पिउ के नेह गईं, सरग भएउ रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार ॥[4]

उस वातावरण को इतना अधिक मार्मिक कर देता है कि पाठक उसी में डूब-सा जाता है । इस स्थल पर यह स्मरण रखना चाहिए कि कथा वस्तु शृंगारिक है परंतु वातावरण करुण रस का है । यहाँ पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि करुण रस शृंगार की क्रोड़ में ही है । क्योंकि पाठक के हृदय में विशुद्ध शोक का स्थायी भाव जागरित होता है ।

§ ७—अन्य रसों की क्रोड़ में करुणरस का सर्व श्रेष्ठ उदाहरण नागमती वियोग एवं संदेश खंड है । यहाँ पर यों तो शृंगार रस ही प्रमुख है परन्तु पाठक के हृदय में रति के साथ साथ शोक का वातावरण उत्पन्न करते हैं । जब नागमती कहती है कि मैं हारिल हूँ, रत्नसेन

[1] वही पृष्ठ २३९
[2] वही
[3] वही
[4] वही पृष्ठ २४०

मेरी लकड़ी थी, वह खो गई है। चोरी, पंडुक और बया के समान मैं हूँ—मेरा प्रिय बिछुड़ गया है—

आरिल भई पंथ में सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा?॥
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौं चित राख न दूसर ठाऊँ॥
जाहि बया होइ पिउ कँठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा॥[1]

या मेरी हड्डियाँ किंगरी हो गई हैं और नसें तांत। मेरे रोम रोम से व्यथा उठ रही है, मैं अपनी कथा कैसे कहूँ—

हाड़ भए सब किँगरी, नसैं भईं सब तांति।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठे, कहौं बिथा केहि भांति?॥[2]

या

ओहि के गुन सँवरत भई माला। अबहु न बहुरा उड़िगा छाला॥[3]

तो पढ़ने वाले का हृदय भर उठता है। परंतु रति की भावना वहाँ प्रमुख रहती है, शोक रति जनित-सा है। इस कारण विशुद्ध करुण रस नहीं कहा जा सकता।

---

[1] वही पृष्ठ १८०   [2] वही पृष्ठ १८१

वात्सल्य

§ १—वात्सल्य रस के आलंबन जायसी में निम्नलिखित व्यक्ति हैं—

१—रत्नसेन और उसकी माता

२—पद्मावती और गंधर्वसेन

३—लक्ष्मी और समुद्र

४—बादल और उसकी माता

५—रसूल और आदम

§ २—रत्नसेन एक युवा पुरुष है और उस की माता अति वयोवृद्ध विधवा स्त्री है। साथ ही साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि रत्नसेन अपनी मा का एकलौता बेटा है।[1] एक स्त्री के लिए गुण-श्रवण मात्र के बाद वह सात समुद्र पार सिंहल दीप जा रहा है। मा इसे नहीं सह सकती। वह अत्यंत करुण स्वर में कहती है—

राजपाट दर परिगह, तुम्ह ही सौं उजियार।
बैठि भोग रस मानहु कै न चलहु अँधियार॥[2]

माता का हृदय कितना कोमल है। रत्नसेन, उस का बेटा, राज, द्वार, भोग-विलास सब कुछ छोड़ कर जा रहा है। माता के जीवन का दीपक ही जैसे बुझ रहा है। सारी दुनियां उस के लिए अँधेरी हो रही है। उस की आँखों का तारा, जीवन की जोत उसे छोड़कर बहुत दूर जा रही है, पता नहीं कब लौटे और लौटे भी या न लौटे। उसे यह भी सहन नहीं हो सकता कि उस का बेटा अपने बदन पर राख मले। वह कहती है—

[1] रत्नसेन विदाई खंड में रत्नसेन ने अपने भाई के विषय में कहा है। परंतु वह गलत है। सारे काव्य में कहीं पर भी इस का उल्लेख नहीं है कि रत्नसेन के कोई भाई था।

[2] जा० ग्रं० पृष्ठ ६१

निति चंदन लागै जेहि देहा । सो तन देख भरत अब खेहा ॥
सब दिन रहेउ करत तुम भोगू ॥ सो कैसे साधव तप जोगू ॥ [1]

उस का विकल हृदय यह भी कहता है—

कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ । कैसे नींद परिहि भुइँ माहाँ ॥
कैसे ओढ़ब काथरि कंथा । कैसे पाँव चलब तुम पंथा ॥
कैसे सहब खिनहि खिन भूखा । कैसे खाब कुरकुटा रूखा ॥ [2]

किन्तु रत्नसेन मा के इस ममता भरे हृदय के प्रति एकदम लापरवाह है । वह अपने में ही लीन है । वह उपदेशक के-से स्वर में कहता है—

मोहि यह लोभ सुनाव न माया । काकर सुख काकर यह काया [3]

और

देखि अंत अस होइहि, गुरू दीन्ह उपदेस ।
सिंहल दीप जाब हम, माता देहु अदेस ॥ [4]

पता नहीं रत्नसेन की इस उपेक्षा के पीछे जायसी का कौन-सा ऐसा बड़ा विशेष अभिप्राय है । वन तो तुलसी के राम भी गए थे परंतु कौशल्या से उन्हों ने अत्यंत मार्मिक एवं वात्सल्य भरे वचन कहे थे और अपनी मां यशोदा को छोड़कर कृष्ण भी मथुरा गए थे, परंतु उन्हों ने कैसी मीठी बातें यशोदा से कही थीं और मथुरा जाकर भी कैसा मधुर संदेश अपनी यशोदा मा के लिए भेजा था। परंतु जायसी का रत्नसेन जायसी की उपदेश देने के एवं प्रेम पंथ की आदर्शवादिता में इतना खो गया है कि मा की इतनी गहरी उपेक्षा कर सकता है । लेकिन रत्नसेन की मा फिर भी अपने बेटे को उतना ही स्नेह करती है । नागमती संदेश भेजते समय पंछी से उसकी दशा बतलाती है—

रतन सेन की माइ सुरसती । गोपी चँद जस मैनावती ॥

[1] वही
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ६२
[4] वही

श्रोनहि बूढ़ि होइ दुख गैसा । जोबन रतन कहाँ दहुँ गँसा ॥[1]

और

जोबन चाहा लीन्ह सो काढ़ी । भइ बिनु टेक करै को ठाढ़ी ? ॥
बिनु जोबन भइ आस पराई । कहाँ सो पूत खंभ होइ आई ॥
नैन दीठि नहिं दिया बराहीं । घर अँधियार पूत जौ नाहीं ॥[2]

वह यह भी बतलाती है—

को रे चलै सरवन के ठाऊँ ।[3]

शायद इस से अधिक वह कुछ भी नहीं कह सकती । नागमती जो अपनी व्यथा से ही व्यथित है, अपनी सास का इतना ध्यान रखे यह भी उस की एक महानता है । माता की मृत्यु भी इसी दुःख में होती है । नागमती कहती है—

सरवन सरवन-ररि मुई माता काँवरि लागि ।
तुम्ह बिनु पानि न पावै दसरथ लावै आगि ॥[4]

मा की व्यथा का यह एक चरम चित्र है ।

§ ३—पद्मावती और गंधर्वसेन का कोई भी मार्मिक चित्र कवि ने हमारे सामने नहीं रखा—

§ ४—लक्ष्मी और समुद्र का भी कवि ने एक धुंधला चित्र हमारे सामने रखा है । पद्मावती के सती होने की दृढ़ भावना को देखकर लक्ष्मी कहती है—

... । ना मरु चहिन, मिलिहि तोर पीऊ ॥
पीउ पानि, होउ पवन अधारी । जसि हौं तहूँ समुद के बारी ॥[5]

उसे अपने पिता के स्नेह में विश्वास है—

मैं तोहि लागि लेहुँ खटवाटू । खोजिहि पिता जहाँ लगि घाटू ॥[6]

1 वही पृष्ठ १८२
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही पृष्ठ २०३
6 वही

और हुआ भी यही—

लछिमी जाइ समुद पहँ रोइ बात यह चालि ।
कहा समुद "वह घट मोरे, आनि मिलावौं कालि" ॥ [1]

पिता के स्नेह का यह एक सुंदर चित्र है।

§ ५—बादल और उस की मा का भी एक छोटा-सा साधारण चित्र लेखक ने पद्मावती में दिया है—

बादल केरि जसोवै माया । आइ गहेसि बादल कर पाया ॥
बादल राय ! मोर तुइ बारा । का जानसि कस होइ जुझारा ॥[2]

वह ममता भरे स्वर में कहती है—

जहाँ दलपती दलि मरहिँ, तहाँ तोर का काज ।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुखराज ॥[3]

माता का वात्सल्य भरा हृदय पुत्र के लिए कितना दुखी हो रहा है। आज ही तो बादल की नई ब्याहता बहू आएगी और आज ही वह युद्ध की तैयारी कर रहा है। परंतु बादल कितनी दृढ़ता से उत्तर देता है—

मातु ! न जानसि बादल आदी । हौं बादला सिंघ रन बादी ॥[4]

और माँ के स्नेह की उपेक्षा कर जाता है।

§ ६—रसूल और आदम के स्नेह का चित्र कवि ने उस समय का दिया है जब कि सारी सृष्टि प्रलय के पश्चात उठी है। रसूल पापी मनुष्यों के उद्धार के लिए आदम से जाकर कहते हैं—

... ... । पिता तुम्हारि बहुत मोहि आसा ॥
उमत मोर गाढ़े है परी । भा न दान, लेखा का धरी ? ॥[5]

वे अपना तर्क भी देते हैं—

[1] वही पृष्ठ ३२०
[2] वही पृष्ठ ३९७
[3] वही पृष्ठ २०४
[4] वही
[5] वही

दुखिया पूत होत जो अहै। सब दुख पै बापै सौं कहै ॥
... ... । तुमहिँ छाँड़ि कासौं पुनि माँगै ॥[1]

वे इतनी ही प्रार्थना करते हैं—

जाइ दैउ सौं विनवौं रोई। दुख दयाल दाहिन तोहि होई ॥[2]

क्योंकि

जेठ जठेर जो करिहै विनती। ठाकुर तवहीं सुनि है मिनती ॥[3]

परंतु आदम अपना पल्ला झाड़ते हुए कहते हैं—

सुनहु पूत, आपन दुख कहऊं। हौं अपने दुख बाउर रहऊं ॥
छोड़ बैकुण्ठ सो आय सुठे लेउं। दूत के कहे मुख गोहूँ मेलेउं ॥

वात्सल्य के इस चित्र में वास्तव में तनिक भी मार्मिकता नहीं है। न तो पिता-पुत्र का कोई यहाँ पर स्नेह ही दिखाई देता है और न जो कुछ भी है उस में कोई मार्मिकता ही। 'पिता' शब्द मात्र का प्रयोग यहाँ पर मिलता है।

§ ७—इस प्रकार जायसी ने वात्सल्य के दायरे में आने वाले निम्न पहलू हमारे सामने रखे हैं—

१. माता-पुत्र २. पिता-पुत्री ३. पिता-पुत्र

माता पुत्र के उदाहरण रत्नसेन तथा उसकी माँ और बादल और उसकी माँ है। पिता पुत्री का उदाहरण लक्ष्मी और समुद्र हैं और पिता पुत्र का उदाहरण आदम और रसूल हैं। माता पुत्र के स्नेह के अतिरिक्त कोई भी चित्र मार्मिक नहीं है। वहाँ भी माँ के कोमल हृदय की ही मनोरम झांकी दिखलाई गई है। रत्नसेन के नागसेन एवं पद्मसेन का भी कोई किलकता हुआ चित्र जायसी ने नहीं दिया।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जायसी का वात्सल्य वर्णन शिथिल-सा है।

[1] वही [2] वही

[3] वही

वीर

§ १—पद्मावती के प्रमुख पात्र अधिकतर क्षत्रिय हैं। रत्नसेन एक सद्वंशी क्षत्रिय है और गंधर्वसेन भी। हीरामन ब्राह्मण है। गोरा-बादल भी क्षत्रिय हैं। राघव चेतन ब्राह्मण है और अलाउद्दीन मुसलमान। रत्नसेन, गंधर्वसेन, गोरा तथा बादल में उन की जातिगत विशेषताएँ मौजूद हैं। इस कारण काव्य में वीर रस के चित्र मिलते हैं। गंधर्वसेन पद्मावती की रक्षा तलवार से करने को तैयार है। परंतु कवि ने कोई भी ऐसा अवसर प्रस्तुत नहीं किया कि हम उसे वीर पात्रों की परिधि में रख सकें।

§ २—रत्नसेन के सामने उस के क्षत्रियत्व के प्रदर्शन का पहला अवसर उस समय आता है जब कि अलाउद्दीन उस से पद्मावती माँगता है। राजा कितने दृढ़ स्वर में कहता है—

का मोहिँ सिंघ दिखावसि आई। कहौं तौ सारदूल धरि खाई॥
भलेहिँ साह पुहुमीपति भारी। माँग न कोउ पुरुष कै नारी॥[१]

और

का तोहिँ जीउ मरावौं सकत आन के दोस?
जो नहिं बुझै समुद्र जल सो बुझाय कित ओस?॥[२]

इन पंक्तियों को पढ़कर मन में उत्साह उमड़ने-सा लगता है। वह आगे इतिहास के साक्षी देते हुए कहता है—

हौं रनथँभउर-नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू॥
हौं सो रतनसेन सक-बंधी। राहु बेधि जीता सैरंधी॥
हनुवँत सरिस भार जेइ काँधा। राघव सरिस समुद जो बाँधा॥[३]

[१] जा० ग्रं० पृष्ठ २५०
[२] वही
[३] वही पृष्ठ २५१

क्रोध का एक दूसरा चित्र भी कवि ने रत्नसेन का दिया है रत्नसेन दूत से कहता है—

तुरुक! जाइ कहु मरे न धाई। होइहि दलकंदर कै नाई॥
सुनि अमृत कदलीबन धावा। हाथ न चढ़ा, रहा पछितावा॥ [1]

× ×

यह चितउर गढ़ सोइ पहारू। सूर उठै तब होइ अँगारू॥ [2]

× ×

महूँ समुझ अस अगमन सजि राखा गढ़ साजु।
कालिह होइ जेहि आवन सो चलि आवै आजु॥ [3]

उत्साह के उद्दीपन विभाव की भी सुन्दर योजना कवि ने की है—

लोहसार हस्ती पहिराए। मेघ साम जनु गरजत आए [4]

जब सवालाख हाथी चलते हैं तो सारी दुनिया हिलने लगती है—

सवा लाख हस्ती जब चाला। परवत सहित सबै जग हाला॥ [5]

इंद्र डरता है, मेरु डोल जाता है और शेषनाग व्याकुल हो उठता है—

दुंद-घाव, भा इन्द्र सकाना। डोला मेरु, सेस अकुलाना॥
धरती डोलि कमठ खरभरा। मथन-अरंभ समुद महँ परा॥ [6]

चारों ओर पाखर आदि चमक रही हैं—

चमकहिं पाखर सार-सँवारी। दरपन चाहि अधिक उजियारी॥ [7]

रत्नसेन तथा अलाउद्दीन का युद्ध भी वीर रस के अंतर्गत ही रखा जाएगा। उस में वीभत्सरस का प्रवेश नहीं हो सका है—

हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहिं। जनु परवत परवत सौं बाजहिं॥
गरू गयंद न टारे टरहीं। टूटहिं दाँत, माथ गिरि परहीं॥

परयत आइ जो परहिँ तराहीं । दर महँ चाँपि खेह मिलि जाहीं ॥ [1]

तलवारों की आग भी बड़ी तेज होती है—

बाजहिं खड़ग उठै दर आगी । भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी ॥ [2]

भाले चल रहे हैं, बाणों की वर्षा हो रही है और गोले बरस रहे हैं—

बरसहिँ सेल बान होइ काँदो । जस बरसै सावन औ भादों ॥
झपटहिँ कोपि, परहिँ तरवारी । औ गोला ओला जस भारी ॥ [3]

युद्ध के इस वर्णन को पढ़कर मन में उत्साह बढ़ता है।

§ ६—गोरा-बादल के संदर्भ में भी वीर रस का सुन्दर चित्र मिलता है। उद्दीपनों का वर्णन कवि करता है—

ओनवत आइ सेन सुलतानी । जानहुँ परलय आव तुलानी ॥
लोहे सेन सूझ सब कारी । तिल एक कहूँ न सूझ उघारी ॥
खड़ग फौलाद तुरुक सब काढ़े । करै बीजु जस चमकहिं ठाढ़े ॥ [4]

और गोरा कहता है—

हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ-घटा मोहि देखि बिलाहीं ॥ [5]

और

सहसौं सीस सेस सम लेखौं । सहसौ नैन इंद्र सम देखौं ॥
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू । कंस न रहा और को साजू ॥
हौं होइ भीम आजु रन गाजा । पाछे घालि डुंगवै राजा ॥
होइ हनुवँत जमकातर ढाहौं । आजु स्वामि साँकरे निबाहौं ॥

होइ नल नील आजु हौं, देहुँ समुद महँ मेंड़ ।
कटक साह कर टेकौं, होइ सुमेरु रन बेंड़ ॥ [6]

[1] वही पृष्ठ २६३
[2] वही पृष्ठ २६४
[3] वही
[4] वही पृष्ठ ३२९
[5] वही पृष्ठ ३२८
[6] वही

इन पंक्तियों को पढ़कर पाठक का मन उत्साह से भर-सा उठता है।

संक्षेप में जायसी के द्वारा वर्णित वीर रस की यही रूप रेखा है। कवि ने कहीं पर भी दया वीरता या दान वीरता का वर्णन नहीं दिया केवल युद्ध वीर के ही चित्र दिए हैं।

शान्त

§ १—जायसी ने शांत रस के चित्र दो प्रकार से दिए हैं—

१—ईश्वर की वंदना करते हुए

२—उपदेश देते हुए

§ २—ईश्वर की वंदना करते हुए कवि ने शांत रस के चित्र पद्मावती के प्रारंभ, अखरावट में यत्र-तत्र एवं आखिरी कलाम के प्रारंभ में दिए हैं।

निर्वेद की गहरी अनुभूति से भरे स्वर में जायसी ने कहा है—

कीन्हेसि कोइ निभरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार।
छारहिं तें सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार॥[1]

और

सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।
एक साजै औ भाजै चहै सँवारै फेर॥[2]

ईश्वर की कृति पर कवि को पूर्ण संतोष है—

कीन्हेसि सहस अठारह बरन बरन उपराजि।
भुगुति दिहेसि पुनि सबन कहँ सकल साजना साजि॥[3]

आखिरी कलाम में इस ईश्वर की दया की प्रार्थना कवि ने की है—

जो ठाकुर अस दारुन, सेवक तहँ निरदोख।
मया करै मुहम्मद तौ पै होइहि मोख॥[4]

§ ३—उपदेश देते हुए कवि ने निर्वेद भाव से भरकर कहा है—

का भूलौं एहि चंदन चोवा। बैरी जहाँ अंग कर रोवां॥

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ २

[2] वही पृष्ठ ३

[3] वही पृष्ठ २

[4] वही पृष्ठ ३८५

हाथ पाँव सरवन औ आँखी। ए सब उहाँ भरहिं मिलि साखी॥
सूत सूत तन बोलहिं दोखू। कहु कैसे होइहि गति मोखू।[1]

सिंहल दीप का घड़ियाल (घंटा) पुकार कर कहता है—

घरा जो डांड़ जगत सब डांड़ा। का निचिंत माटी कर भांड़ा॥
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ कांचे। आपहु रहै न थिर होइ बांचे॥
भरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ। का निचिंत होइ सोउ बटाउ॥[2]

और कवि ने भी कहा है—

मुहम्मद जीवन-जल भरन रहँट-घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति॥[3]

पद्मावती में कवि ने प्रायः वर्णन के अथवा रस के चरमोत्कर्ष के उपरांत शांत रस का प्रयोग करते हुए उसे समाप्त किया है। इस से सारे काव्य में एक आध्यात्मिकता एवं पवित्रता के दर्शन-से होने लगे हैं और काव्य में उत्कर्ष आ गया है।

आखरावट का नीरस काव्य भी शांत रस के अंतर्गत आवेगा। आखिरी कलाम का सारा वातावरण शांत रस की ही गोद में पल रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कवि ने शांत रस का सुन्दर प्रयोग अपनी पद्मावती में किया है। अन्य काव्यों के वर्णनों में विशेष मार्मिकता का अभाव है।

वीभत्स

§ १—वीभत्स रस का उपयोग कवि ने युद्ध-स्थल में ही किया है। गोरा-बादल एवं अलाउद्दीन के युद्ध में कवि लिखता है—

टूटहिं सीस, अधर धर मारै। लोटहिँ कंधहिँ कंध निरारै॥
कोई परहिँ रुहिर होइ राते। कोई घायल घूमहिं माते॥
कोइ खुरखेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी॥[1]

दूसरा चित्र इस से भी अधिक जुगुप्सा से भरा हुआ है—

लोटहिं सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका॥[2]

ये दोनों चित्र एक परंपरा में बँधे हुए हैं। दोनों में कहीं पर भी मौलिकता के दर्शन नहीं है और रस के दृष्टि कोण से विशेष मार्मिकता नहीं। चित्र में चित्रपट की विशदता और रंगों की गहराई का अभाव है। व्यभिचारी भावों तथा हावों की योजना न होने के कारण पढ़ने वाले के मन पर कोई गहरा असर इन पंक्तियों का नहीं पड़ता।

---

१ जा० ग्रं० पृष्ठ ३२९ २ जा० ग्रं० पृष्ठ ३३०

नख-शिख

§ १—नख-शिख वर्णन जायसी की पद्मावती में ही मिलता है, अखरावट एवं आखिरी कलाम में वह नहीं मिलता। पद्मावती में कवि ने नख-शिख वर्णन रानी पद्मावती का ही प्रमुखतया दिया है। नागमती का नख-शिख स्वयं नागमती ही एक स्थान पर पद्मावती से विवाद करते समय आत्मश्लाघा के रूप में वर्णन करती है।[1] कवि ने उस से अपनी कोई भी सहानुभूति नहीं दिखाई। सिंहल की वेश्याओं का भी एक अव्यवस्थित नख-शिख वर्णन सिंहल दीप खंड में दिया गया है[2] परन्तु वह भी महत्वहीन है।

§ २—केशों का वर्णन सर्वदा खुले बालों के रूप में ही किया गया है। कहीं पर भी बँधे हुए जूड़े का वर्णन नहीं मिलता। खुले बालों का वर्णन भी दो रूपों में है:—

(१) खुले हुए स्थिर केशों का वर्णन

(२) खुले हुए हिलते केशों का वर्णन

खुले हुए स्थिर केशों की उपमा कवि नागिन या नाग से अधिक देता है—

नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा[3]

× ×

बेनी नाग मलय गिरि पैठी[4]

× ×

प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि बासुकि का और नरेसा॥[5]

× ×

[1] जा० ग्रं०, पृष्ठ २२४

[2] वही पृष्ठ १७

[3] वही पृष्ठ २८

[4] वही पृष्ठ २५

[5] वही पृष्ठ ४७

तेहि पर अलक भुअंगिनि डसा[1]

× ×

केसि नाग कित देखि मैं सँवरि सँवरि जिय काँप[2]

इस के अतिरिक्त कवि ने भ्रमर, एवं प्रेम की जंजीर से भी केशों की उपमा दी है—

भँवर केस[3]

× × ×

ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ।[4]

× × ×

घुँघर वार अलकैं विष भरी। सँकरैं पेम चहैं गिउ परी[5]

यहाँ पर स्मरणीय यह है कि केशों की प्रेम की जंजीर से उपमा देना मूर्त का अमूर्त विधान है। नाग, राहु और भ्रमर तो मूर्त के मूर्त-विधान के अंतर्गत ही रखे जाएँगे परंतु प्रेम की जंजीर मूर्त के मूर्त विधान के अंतर्गत नहीं आ सकती।

हिलते हुए केशों की उपमा कवि ने लहराते हुए सर्पों एवं तरंगों से भरी यमुना से दी है—

सरकहिं विष-भरे पसारे। लहरि-भरे लहकहिं अति कारे॥[6]

× ×

जानहुँ लोटहिं चढ़े भुअंगा[7]

× ×

लहरैं देइ जनहु कालिंदी[8]

इस प्रकार इन उपमानों के द्वारा कवि ने इस वर्णन को सजीव

१ [illegible] २०८
२ [illegible] २४१
३ [illegible] ४५
४ [illegible] ३८
५ वही पृष्ठ ४७
६ वही पृष्ठ २४१
७ वही
८ वही

बनाया है। कवि का ध्यान केशों के वर्णन में सदा उन की श्यामता एवं घुँघुरालेपन पर रहा है। वह कभी इस से आगे बढ़ने का प्रयत्न नहीं करता। न तो केशों की दीर्घता उसे सूझी और न किसी प्रकार के अन्य सौन्दर्य की भावना।

§ ३—केश के पश्चात् प्रायः कवि ने माँग का वर्णन किया है। माँग की उपमा वह दो प्रकार के उपमानों से देता है—

(१) मूर्त उपमान

(२) अमूर्त उपमान

मूर्त उपमानों में सरस्वती, वीर बहूटी, रात्रि में उजाला पंथ, दामिनी, रुधिर भरी तलवार, कंचन-रेखा एवं गगन में सूर्य की किरण प्रमुख हैं :—

जमुना मांझ सरसुती मंगा[१]
× ×
बीर बहूटिन की अस पांती[२] (सिंदुर भरी मांग)
× ×
उजियर पंथ रैनि महँ कीन्हा[३]
× ×
जनु घन महँ दामिनि पर गसी[४]
× ×
खांडे धार रुहिर जनु भरा[५]
× ×
कंचन रेख कसौटी कसी[६]
× ×

[१] वही, पृ० २४२
[२] वही
[३] वही पृष्ठ ४७
[४] वही
[५] वही
[६] वही

सुरुज किरन जनु गगन बिसेखी[1]

अमूर्त उपमानों में राता वसंत प्रमुख है—

जनु बसंत राता जग देखा[2]

§ ४—ललाट के उपमान दुइज का शशि एवं सूर्य हैं—

कहाँ लिलार दुइज कै जोती[3]

× ×

सहस किरन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई ॥[4]

ललाट के वर्णन में कवि ने कांति पर अपना ध्यान रखा है। कवि न तो उस की बनावट की ओर ध्यान देता है और न उस के वर्ण की ओर। ललाट के वर्णन में कवि ने उपमानों की हीनता प्रायः सिद्ध करने की चेष्टा की है :—

कहाँ लिलार दुइज की जोती। दुइजइ जोति कहाँ जग ओती ॥[5]

× ×

सहस किरन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छप जाई॥[6]

§ ५—भौंह के वर्णन में कवि ने धनुष का उपमान ही प्रत्येक स्थान पर दिया है :—

भौंहें साम धनुक जनु चढ़ा।[7]

इस उपमान को लेखक ने एक स्थल पर तो दूर तक निभाया है—

चंद्र क मूठि धनुक वह ताना। काजर पनच बरुनि बिष बाना ॥[8]

कहीं कहीं तो भौंहों के वर्णन में कवि ने अतिशयोक्ति की है कि

[1] वही
[2] वही पृष्ठ २४१
[3] वही पृष्ठ ४८
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही पृष्ठ २४२

वही धनुष, राम-कृष्ण आदि सभी के पास है।[1]

§ ६—नयनों के वर्णन में कमल, भ्रमर, तुरंग, खंजन, मृग एवं तरंगों से भरे हुए माणिक्य के उपमानों का उपयोग किया गया है—

राते कँवल[2]

× ×

करहिं अलि भवाँ[3]

× ×

उठहिँ तुरंग लेहिँ नहिँ बागा।[4]

× ×

खंजन लरहिँ[5]

× ×

मिरिग जनु भूले[6]

× ×

सुभर सरोवर नयन वै मानिक भरे तरंग ॥[7]

इन उपमानों के द्वारा कवि नयनों की सुडौलता, चापल्य एवं कांति का चित्रण करना चाहता है।

§ ७—बरुनियों का वर्णन कवि ने बाण का उपमान दे कर किया है—

बरुनी कां बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी ॥[8]

एक दूसरा उपमान कवि ने और भी दिया है—

जुरी राम रावन कै सैना। बीच समुद्र भए दुइ नैना ॥[9]

[1] वही पृष्ठ ४८

[2] वही

[3] वही

[4] वही पृष्ठ ४९

[5] वही

[6] वही

[7] वही

[8] वही

[9] वही

अधरों की बनावट पर उस का ध्यान नहीं जाता।

§१०—दाँतों के लिए निम्न-लिखित उपमान प्रयुक्त किए गए हैं :—

हीरा—

दसन चौक जनु बैठे हीरा।[1]

दामिनी—

जनु भादौं-निसि दामिनि दीसी।[2]

दाड़िम—

दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरकि।[3]

दांतो के वर्णन में कवि का ध्यान दांतों की बनावट एव चमक दोनों ओर रहा है।

§ ११—रसना के वर्णन में उसे अमृत-कौंप कहा गया है—

अमृत-कौंप जीभ जो लाई।[4]

§ १२—कपोलों का वर्णन भी परम्परागत उपमानों के सहारे किया गया है—

नारंगी—

एक नारँग दुइ किए अमोला।[5]

खाँड के लड्डू—

फेइ यह सुरँग खखौरा बांधे।[6]

कमल—

कँवल कपोल[7]

गेंद—

सुरँग गेंद[8]

[1] वही पृष्ठ ५०
[2] वही
[3] वही
[4] वही पृष्ठ २४५
[5] वही पृष्ठ ५१
[6] वही पृष्ठ २४५
[7] वही पृष्ठ २४६
[8] वही

भी देता है—

दुहुँ दिसि चाँद सुरुज चमकाहीं।[1]

एक दूसरे स्थल पर कवि स्वर्ण की सीपी से कानों की उपमा देता है—

स्रवन सुनहु जो कुंदन-सीपी।[2]

§ १५—कवि ने चिबुक का वर्णन नहीं दिया है। किन्तु सारे मुख का सौन्दर्य अपनी लेखनी द्वारा उस ने अंकित किया है। मुख की उपमा वह चन्द्रमा से देता है—

ससि-मुख अंग मलयगिरि बासा।[3]

§ १६—मुसकान के वर्णन में वह उपमान देने के साथ ही साथ सजीवता की रक्षा भी करता है—

दसन दसन सौं किरिन जो फूटहिँ। सब जग जनहुँ फुलझरी छूटहिँ॥
जानहुँ ससि महँ बीजु देखावा। चौंधि परै, कछु कहै न आवा॥[4]

§ १७—कवि ने ग्रीवा के उपमान भी अधिकतर साधारण परम्परागत ही रखे हैं—

मयूर—

गीउ मयूर केरि जस ठाढ़ी।[5]

तुरंग—

बाँक तुरंग जनहुँ गहि परा।[6]

घिरिन परेवा—

घिरिन परेवा गीउ उठावा।[7]

मुर्गा—

चहै बोल तमचूर सुनावा।[8]

[1] वही
[2] वही २४५
[3] वही पृष्ठ २८
[4] वही पृष्ठ २४०
[5] वही पृष्ठ २४६
[6] वही
[7] वही
[8] वही

जो रानी ओढ़ि कँचन-कचोरी ।[1]

§ २०—उरोजों के वर्णन में भी कवि ने कोई विशेष मौलिकता नहीं दिखलाई। उरोजों के उपमान के रूप में वह निम्नलिखित वस्तुओं को रखता है—

कंचन के बेल—

कंचन बेल साजि जनु दूँदै ।[2]

कंचन के लड्डू—

हिया थार कुच कंचन लाडू ।[3]

कंचन की कचौरी—

कनक कचौर उठे जनु चारू ।[4]

[illegible]—

[illegible] उभीर होइ रतनारी ।[5]

नारंगी—

जस नारँग [illegible] ।[6]

श्रीफल—

जानहुँ दुऔ श्रीफल-जोरा ।[7]

[illegible]—

[illegible] ।[8]

[illegible]

§ २१—[illegible]

[illegible]—

1 [illegible]
2 [illegible]
3 [illegible]
4 [illegible]
5 [illegible]
6 [illegible]
7 [illegible]
8 [illegible]

पेट परत जनु चंदन लावा। कुँह कुँह-केसर बरन सुहावा ॥[1]

पेट के आहार के विषय में भी वह कहता है—

खीर अहार न कर सुकुवाँरा। पान फूल के रहै अधारा[2]।

§ २२—रोमावली का वर्णन फिर कवि उपमानों द्वारा करता है—

साम भुअंगिनि रोमावली[3]

यहाँ रोमावली की उपमा कवि ने श्याम सर्पिणी से दी है। वह इस उपमान को पूर्ण सजीवता प्रदान करता है कि यह सर्पिणी—

नाभी निकस कंवल कहँ चली[4]

कमल से कवि का तात्पर्य मुख से है। यह सर्पिणी मुख की ओर जा रही है कि—

आइ दुऔ नारँग बिच भई[5]

नारंगियों से तात्पर्य स्पष्ट ही उरोजों से है। यह रोमावली रूपी सर्पिणी वहीं तक आई है फिर

देखि मयूर ठमकि रहि गई[6]

मयूर एवं सर्प का जन्म-जात वैर है। इसी कारण वह वहीं पर रुक गई, आगे नहीं बढ़ सकी। कवि ने उपमानों का कैसा सार्थक प्रयोग इस स्थल पर किया है कि वे वर्णन के बिलकुल अनुरूप ही बैठते हैं।

एक दूसरा उपमान कवि देता है—

मनहुँ चढ़ी भौंरन्ह कै पांती[7]

यहाँ पर कवि वर्ण साम्य पर जा रहा है। तीसरा उपमान वह रूप साम्य पर देता है—

[1] वही पृष्ठ ५३

[2] वही

[3] वही

[4] वही

[5] वही

[6] वही

[7] वही

रोमावली चिबुक

चौथा उपमान फिर वह वर्ण साम्य के ही आधार पर रख रहा है—

कै कालिंदी विरह-सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई॥[2]

§ २३—कटि का वर्णन कवि ने फिर परंपरागत उपमानों के सहारे किया है।

कवि पहले हमारे सामने भृंग की उपमा रखता है—

भृङ्ग-लंक जनु माँझ न लागा[3]

फिर कमल-नाल के रेशों मे समानता दिखलाता है—

दुइ खँड-नलिन माँझ जनु तागा[4]

तीसरा उपमान कवि केहरी-लंक देता है—

लंक पुहुमि अस आहि न काहू। केहरि कहौं न ओहि सरि ताहू॥[5]

ये तीनों ही उपमान बहु-प्रयुक्त हैं। इन में किसी प्रकार की भी नवीनता नहीं है। कवि ने सिंह की कटि से पद्मावती की कटि की उपमा देते समय उपमान को अत्यन्त सँजोकर एक स्थान पर रखा है—

सिंघ न जीता लंक सरि, हारि लीन्ह बन बासु।
तेहि रिस मानुस-रकत पिय, खाइ मारि कै माँसु॥[6]

§ २४—नाभि के वर्णन में कवि ने समुद्र की गम्भीर भँवर का उपमान रखा है—

समुद-भँवर जस भँवै गँभीरू[7]

साथ ही साथ कवि ने नाभि की सुगंध पर जोर दिया है—

बेधि रहा जग बासना परिमल मेद सुगंध।
तेहि अरघानि भौंर सब लुबुध तजहिँ न बंध॥[8]

[1] वही पृष्ठ २०८
[2] वही पृष्ठ ५३
[3] वही पृष्ठ २४७
[4] वही
[5] वही पृष्ठ ५४
[6] वही पृष्ठ ५५
[7] वही
[8] वही

§ २५—पीठ का भी वर्णन कवि ने किया है। पीठ का एक उपमान वह मलयगिरि को रखता है—

मलयागिरि कै पीठि सँवारी[1]

क्योंकि वेणी की उपमा नागिन से दी जाती है—

बेनी नागिनि चढ़ी जो कारी[2]

§ २६—कवि ने नितंबों का परंपरागत वर्णन नहीं दिया परन्तु उन का नाम मात्र लेकर छोड़ दिया है। न तो कोई इन के लिये उपमान ही रखा है न उन का कोई स्वतंत्र वर्णन ही पद्मावती में मिलता है।

§ २७—उरुओं का वर्णन कवि ने किया है—

जुरे जंघ सोभा अति पाये[3]

मानो

केरा खम्भ फेरि जनु लाए।[4]

कवि ने इस के अतिरिक्त अन्य किसी उपमान का उपयोग नहीं किया।

§ २८—पद्मावती की चाल के विषय में कवि ने लिखा है—

औ गज गवन देखि गन लोभा[5]

× × ×

हंस लजाइ मानसर खेले[6]

§ २९—चरणों की उपमा कवि ने कमल से दी है—

कँवल-चरन अति रात बिसेखी।[7]

कवि ने चरणों की उँगलियों का वर्णन नहीं दिया। हाँ, इतना अवश्य कहा है—

१ वही पृष्ठ ५४
२ वही
३ वही पृष्ठ ५५
४ वही
५ वही
६ वही पृष्ठ २४७
७ वही पृष्ठ ५५

अनवट बिछिया नखत तराईं। पहुँचि सकै को पायँन ताईं[1]

§ ३०—संक्षेप में नख-शिख में प्रयुक्त उपमानों की यही रूप रेखा है। ये सारे के सारे उपमान निम्न लिखित वर्गों में विभक्त हो सकते हैं—

(१) प्रकृति से लिए गए उपमान

(२) संसार की अन्य वस्तुओं में से लिए गए उपमान

कमल[2], भ्रमर[3], चंद्रमा[4] आदि प्रकृति से लिए गए उपमान हैं और खड्ग[5] आदि संसार की अन्य वस्तुओं में से लिए गए उपमान।

इन उपमानों के द्वारा जायसी का ध्यान इसी ओर बराबर रहा है कि वस्तु सौन्दर्य अपने चरम रूप में व्यक्त हो जावे। कवि की स्वप्निल आँखों में पद्मावती का कोई सुनिश्चित चित्र नहीं था। वह तो एक साधारण स्त्री को रूप और सौन्दर्य की प्रतिमा के रूप में चित्रित करना चाहता था। इसी कारण सारे नख-शिख वर्णन पढ़ने के पश्चात पद्मावती की कोई बहुत निश्चित प्रतिमा हमारे सामने भी नहीं आती।

§ ३१—इन परम्परागत उपमानों के सहारे किया गया वर्णन पर्याप्त काव्यात्मक रहा है। परन्तु कहीं कहीं अपनी उक्ति चमत्कार एवं अतिशयोक्ति के कारण हास्यास्पद भी हो उठा है।

रोमावली वर्णन में जिस काव्यात्मकता के दर्शन हमें होते हैं उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कटि के वर्णन में सिंह के मांसाहार की भी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। गले के सम्बन्ध में जिस अतिशयोक्ति का सहारा जायसी ने

घूँट जो पीक लीक सब देखा[6]

कहकर लिया है उस को यहां पर दुहराना व्यर्थ है।

[1] वही

[2] वही पृष्ठ २४५

[3] वही पृष्ठ ४७

[4] वही, पृष्ठ ४८

[5] वही पृष्ठ ४९

[6] वही पृष्ठ ५२

नलिन खंड दुइ तस करिहाऊँ । रोमावली बिछूक कहाऊँ ॥[१]

इस नख-शिख वर्णन में कवि ने जितनी जगह नाम लिया है उतनी गह तो वर्णन में शिथिलता है और जहां पर नाम नहीं लिए वहां पर वर्णन में एक विशेष चमत्कार के कारण सजीवता है।

अन्य पात्रों द्वारा वर्णित नख-शिख वर्णन दो प्रकार का है—

(१) जहां पात्र स्वयं अपना वर्णन करता है[२]

(२) जहां एक पात्र किसी दूसरे का वर्णन करता है[३]

जहां पात्र स्वयं अपना वर्णन करता है ऐसे दो स्थल हैं। उन दोनों स्थलों में वर्णन आत्मश्लाघा के रूप में ही हुआ। अन्य वर्णनों को देखते हुए उन में किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं मिलती। आश्चर्य की बात यह है कि पद्मावती एवं नागमती दोनों अपना नख-शिख वर्णन कितनी प्रगल्भता के साथ करती हैं। नारीत्व की स्वाभाविक लज्जा भी यह तकाज़ा करती है कि नागमती-पद्मावती अपनी रोमावली आदि का वर्णन न करतीं। जहां तक मुख-सौन्दर्य के वर्णन का प्रश्न है, वह तो कुछ स्वाभाविक भी कहा जा सकता है।

अन्य पात्रों द्वारा किए गए वर्णन दो प्रकार के हैं :

(१) पद्मावती के कल्याण की भावना से किए गए वर्णन[४]

(२) पद्मावती के अकल्याण की भावना से किए गए वर्णन[५]

हीरामन ने जो वर्णन राजा रत्नसेन के सामने किया है वह पद्मावती के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही किया है। पद्मावती ने स्वयं उस से कहा था—

सुन हीरामनि कहौं बुझाई । दिन दिन मदन सतावै आई ॥
पिता हमार न चालै बाता । त्रासहि बोल सकै नहिँ माता ॥[६]

फिर कवि ने नाम लिया

[१] वही

[२] वही पृष्ठ २२४

[३] वही, पृष्ठ ४७-५५

[४] वही पृष्ठ ४७-५५

[५] वही पृष्ठ २४०-२४७

[६] वही पृष्ठ २५

और हीरामन ने रानी पद्मावती को वचन भी दिया था—

अज्ञा देउ देखौं फिरि देसा। तोहि जोग वर मिलै नरेसा॥[1]

परन्तु राघव चेतन की तो कहानी ही दूसरी है। रत्नसेन ने आज्ञा दी है—

सारहु नाहिँ निसारहु देसू[2]

और इस प्रकार अपमानित होकर वह देश-निकाला पा रहा है। वह कहता है—

हौं रे ठगा एहि चितउर माहौं। कासौं कहौं, जाऊँ केहि पाहौं॥[3]

और तब द्वेष से भरकर दिल्ली जाता है। इस कारण उस के रूप वर्णन में हीरामन के वर्णन से कुछ न कुछ तो मौलिक अंतर होना ही चाहिए था। परन्तु वास्तविक परिस्थिति यह है कि दोनों में कुछ अंतर तो अवश्य है परन्तु कोई मौलिक अन्तर नहीं है। हीरामन को और ऊँचे उपमानों का प्रयोग एव अधिक सौन्दर्य की व्यंजना करनी चाहिए थी। परन्तु वह हमें नहीं मिलता दूसरी बात यह कि हीरामन ने नख-शिख वर्णन एक हिन्दू के सामने दिया था अतः वह हिन्दू शैली में होना चाहिए था। राघव चेतन स्वयं तो यद्यपि हिन्दू था परन्तु उस ने वर्णन एक मुसलमान बादशाह के सामने किया था अतः उस के वर्णन की व्यंजना पर मुसलमानी शैली का कुछ न कुछ प्रभाव होना आवश्यक था। इस को भी जायसी भूल गए हैं।

ये दोनों वर्णन लगभग एक-से ही हैं। हीरामन का वर्णन-क्रम इस प्रकार है—

(१) केश, (२) मांग, (३) ललाट, (४) भौंह,
(५) नयन, (६) वरुनी, (७) नासिका, (८) अधर,
(९) दाँत, (१०) रसना, (११) कपोल, (१२) तिल,

१ वही

२ वही पृष्ठ २२९ ३ वही पृष्ठ २३१

(१३) कान, (१४) ग्रीवा, (१५) भुजा, (१६) हथेली,
(१७) उरोज, (१८) पेट, (१६) रोमावली, (२०) पीठ,
(२१) कटि, (२२) नाभि, (२३) नितंब, (२४) चाल,
(२५) उरु, (२६) चरण, (२७) अंगुलियाँ

राघव चेतन का वर्णन-क्रम इस प्रकार है—

(१) मुख, (२) मुस्कान, (३) केश, (४) भौंह,
(५) केश, (६) माँग, (७) ललाट, (८) भौंह,
(६) नयन, (१०) नासिका, (११) अधर, (१२) दाँत,
(१३) रसना, (१४) कान, (१५) कपोल, (१६) तिल,
(१७) ग्रीवा, (१८) भुजा, (१६) उरोज, (२०) कटि,
(२१) चाल

इस वर्णन-क्रम में हम देखते हैं कि राघव चेतन पहले ही मुख, मुस्कान, नयन एवं भौंह का वर्णन करता है। इस का कारण यही है कि उस ने झरोखे में से पद्मावती का इतना ही भाग देखा था। वही भाग उस के मन में समाया था इसी कारण वह पहले ही उस का वर्णन करता है। शरीर के शेष अंगों का वर्णन तो उस का एकमात्र काल्पनिक है। पद्मावती के अंग-प्रत्यङ्ग तो उस ने कभी देखे नहीं होंगे।

इन दोनों नख-शिखों में सिर से नितंबों और जांघों तक का तो वर्णन है परन्तु उस के नीचे शरीर के जो अवयव होते हैं उन का वर्णन कवि ने लगभग नहीं किया है। पता नहीं इस के पीछे कवि का कौन-सा सिद्धान्त है। शायद शरीर के उन अंगों की सुन्दरता से वह परिचित नहीं है।

§ २३—जायसी के लगभग समकालीन हिन्दी काव्य में राम-सीता एवं कृष्ण-राधा के ही नख-शिख हमें आज प्राप्त हैं। राम-सीता का नख-शिख तुलसीदास ने चित्रित किया है और कृष्ण-राधा का सूरदास, नंददास, मीराबाई आदि ने। कबीर के संत मत में निर्गुण एवं निराकार की साधना थी। अतएव वहाँ किसी नख-शिख का वर्णन असंभव है। राम-सीता एवं कृष्ण-राधा दोनों ही व्यक्तित्व आध्यात्मिक हैं।

सीता एवं राधा का नख-शिख बहुत कम और अविशद है। इस कारण जायसी के नख-शिख वर्णन की तुलना मध्ययुग के अन्य नख-शिख वर्णनों से अधिक नहीं हो सकती। जायसी इस क्षेत्र में अकेले हैं।

परन्तु इस का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि जायसी का वर्णन मौलिक है। जायसी के प्रायः सभी उपमान साहित्य के घिसे-पिटे उपमान हैं। उन में किसी प्रकार की मौलिकता के प्रायः दर्शन नहीं होते—इस की विवेचना ऊपर की जा चुकी है। परन्तु फिर भी जायसी का नख-शिख वर्णन महत्व पूर्ण है।

प्रकृति

§ १—जायसी में प्रकृति का उपयोग दो प्रकार से हुआ है :—

१ पात्र के रूप में

२ प्रकृति-वर्णन के रूप में

§ २—पहले का उदाहरण हीरामन सुआ है।[1] यह एक पंखों-युक्त मानवी पात्र है। इस में सुख-दुख, हर्ष-उल्लास की वैसी ही भावनाएँ चित्रित हैं जैसा कि मनुष्य में होती हैं। रत्नसेन को शूली मिलते देखकर उसे उसी विकलता की अनुभूति हुई थी[2] जो किसी भी मनुष्य को हो सकती थी जो कि एक सच्चे दूत के रूप में वहाँ पर होता।

§ ३—दूसरे का उदाहरण शेष प्रकृति वर्णन है। शेष प्रकृति का उपयोग जायसी ने निम्नलिखित लक्ष्यों के लिए किया है—

१—उपमानों के लिए

२—उपदेश देने के लिए

३—वातावरण उत्पन्न करने के लिए

४—घटना वर्णन करने के लिए

५—मनुष्य के सुख-दुख वर्णन करने के लिए

६—ईश्वर का ऐश्वर्य वर्णन करने के लिए

§ ४—उपमानों के रूप में कवि ने प्रकृति का जो उपयोग किया है वह निम्न लिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) नख-शिख के उपमान

(२) मानवी भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान

(३) अन्य वस्तुओं एवं कार्यों के उपमान

[1] जो पक्षी नागमती का संदेश रत्नसेन तक ले गया था वह भी इसी श्रेणी में आएगा।

[2] जा० ग्रं० पृष्ठ १२८

विरिनि परेवा होइ, पिउ ! आउ वेगि परु टूटि ।
नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि ॥[1]

यहां उपमान को उपमेय में आत्मसात करा देने का जो भाव है वही इस दोहे की मार्मिकता है ।

नागमती अपना सुप्रसिद्ध[2] दोहा भी प्रकृति के सहारे ही कहती है—

कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ ।
कबहुँ वेलि फिरि पलुहै जो पिउ सींचै आइ ॥[3]

इस छन्द में जैसे नागमती की व्यथा साकार होकर व्याप्त हो उठी है । इन उपमानों के छिपे-छिपे उपमेयों को कवि ने साफ़-साफ़ नहीं दिया और काव्य की माधुरी एवं आनन्द से परिप्लावित पाठक का हृदय उन्हें सोचता भी नहीं । परन्तु सत्य तो यही है कि कमल, मान-सर, जल सभी उपमान हैं और उन के सुनिश्चित उपमेय भी हैं ।

पद्मावती भी रत्नसेन से समुद्र में बिछुड़ जाने पर नागमती के समान सारस जोड़ी के उपमान का ही आश्रय लेकर कहती है—

को मोहिँ आगि देइ रचि होरी । जियत न बिछुरै सारस-जोरी ॥[4]

पद्मावती की व्यथा का चित्रण जायसी भी प्रकृति के सहारे ही करते हैं—

गगन धरति जल बुड़ि गए, बूड़त होइ निसाँस ।
पिउ पिउ चातक ज्यों ररै, मरै सेवाति पियास ।[5]

[1] वही पृष्ठ १७७

[2] जनश्रुति है—कि एक साधु नवयुवक अमेठी में आकर नागमती की विरह गाथा गाता और भीख माँग कर पेट पालता था । एक दिन अमेठी के राजा ने यह उस के मुँह से सुना । उन्हें यह दोहा बहुत पसंद आया । इसी से यह दोहा अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त किए हुए है ।

[3] जा० ग्रं० पृष्ठ १७८

[4] वही पृष्ठ २०२

[5] वही—पृष्ठ २०८

यहां पर प्रकृति के उपमान ही व्यंजना को अधिक बढ़ा रहे हैं।

नागमती-रत्नसेन भेंट होने पर कवि कहता है—

कंठ लाइ कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींचि पलुहाई॥[1]

कवि यहां पर फिर प्रकृति के उपमानों का सहारा लेता है। 'कंठ लाइ कै नारि मनाई' तो अति साधारण कथात्मक उक्ति है। 'जरी जो बेलि सींचि पलुहाई' से पंक्ति की सारी काव्यात्मकता आ गई है।

नागमती रत्नसेन को उलाहना देते हुए कहती है—

भंवर-पुरुष अस रहै न राखा। तजै दाख, महुआ रस चाखा॥[2]

यहां पर नागमती अपने को दाख, पद्मावती को महुआ और रत्नसेन को भ्रमर कह रही है। यह प्रकृति से यदि ये उपमान न लेती, तो उस के मन के भाव ही लगभग सर्वथा अव्यक्त रह जाते। वह फिर कहती है—

तजि नागेसर फूल सोहावा। कवँल बिसैंधहिं सौं मन लावा॥[3]

यहां पर वह अपने को नागेसर फूल और पद्मावती को कमल का फूल मानती है। और कमल में बिसायँध गंध का आरोप कर अपने को ऊंचा और रत्नसेन रूपी भ्रमर की रुचि को गलत बतला रही है।

पद्मावती भी अपने सारी रात अकेले रहने की कहानी प्रकृति के उपमानों के ही सहारे धर्म, वाचक शब्द एवं उपमेय सभी लुप्त कर कह रही है—

सुभर सरोवर हंस चल, घटतहि गए बिछोइ।
कँवल न प्रीतम परिहरै, सूखि पंक बरु होइ॥[4]

यहां पर पद्मावती ने अपने पक्ष में जो उपमान रखे हैं वे वास्तव में उस की उक्ति में शक्ति एवं मार्मिकता ला देते हैं। सरोवर सूखने पर हंस तो चले जाते हैं पर कमल सरोवर छोड़कर कहीं नहीं जाता;

[1] वही पृष्ठ २१७
[2] वही
[3] वही
[4] वही पृष्ठ २१८

भले ही सूख जाए। यहाँ पर प्रकृति पद्मावती को कितना अधिक सहारा दे रही है।

राघव चेतन भी प्रकृति के ही सहारे अपनी व्यथा कहता है—

> कित करमुहँ नैन भए, जीउ हरा जेहि बाट।
> सरवर नीर-बिछोह जिमि दरकि दरकि हिय फाट।[1]

यहां पर राघव चेतन अपने को सरोवर कहकर पद्मावती के रूप को जल कह रहा है और उसी के माध्यम से अपनी भावनाएं व्यक्त कर रहा है। जल के बिछुड़ जाने पर सरोवर का हृदय (मिट्टी) फट जाता है (दरक जाता है) उसी प्रकार पद्मावती के सौन्दर्य रूपी जल के बिछुड़ जाने पर राघव का हृदय फट गया।

रत्नसेन अलाउद्दीन का सन्देश पढ़कर तम उठता है और प्रकृति के उपमानों का सहारा लेकर कहता है—

> का तोहिं जीउ मरावौं सकत आन के दोस ?
> जो नहिं बुझै समुद्र-जल सो बुझाइ किन ओस ? ॥[2]

अलाउद्दीन को मारना समुद्र जल की प्यास है और उस के दूत को मारना ओस चाटना है। राजा रत्नसेन कहते हैं कि मैं तुम्हें मारकर क्या पाऊंगा ?

पद्मावती एवं नागमती सती होते समय भी अपने मन की भावनाएं प्रकृति के सहारे ही व्यक्त करती हैं :

> आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़।
> आजु नाचि जिउ दीजिए, आजु आगि हम्ह जूड़ ॥[3]

यहां पर सूर्य एवं चन्द्रमा सुख, खुशी, हर्ष के प्रतीक हैं। नागमती और पद्मावती के सुख-दुखों में जो भी खुशी एवं हर्ष था वह समाप्त हो गया। जीवन में प्रकाश का ही कोई साधन नहीं बचा इसी कारण

[1] वही पृष्ठ २३२ [2] वही पृष्ठ २५०

[3] वही पृष्ठ २२९

'आज नाचि जिउ दीजिए'। ऐसे जीवन से तो प्राण के [illegible] जीवन समाप्त कर देना अधिक अच्छा है।[1]

§७—उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रकृति के उपमानों के सहारे जायसी ने मानवी सुख-दुखों की व्यंजना की है। ये उपमान अपने प्रयोग के आधार पर दो प्रकार के हैं—

(१) जहाँ पर ये स्पष्टतः ही उपमान प्रतीत होते हैं

(२) जहाँ पर ये उपमान-जैसे नहीं लगते

दोनों के उदाहरण ऊपर के विवेचन में दिए गए हैं। पहले के उदाहरण तो स्वतः स्पष्ट हैं और दूसरे का एक उत्कृष्ट उदाहरण निम्नलिखित छंद है—

आज सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम जूड़।[2]

इस में यों तो नहीं प्रतीत होता कि सूर्य, चन्द्र, दिन एवं रात किसी उपमेय के उपमान हैं। परन्तु ध्यान देने पर पता चलता है कि सूर्य एवं चन्द्र हर्ष तथा आनन्द के उपमान हैं और दिन एवं रात सुख एवं दुख के।

इस प्रकार जायसी ने अपनी कविता में सर्वत्र मानवी सुख दुखों का वर्णन प्रकृति के उपमानों के सहारे किया है। यदि मानवी हृदय की सुख दुखमयी भावनाएं अपने सुस्पष्ट एवं खुले रूप में कोई पात्र व्यक्त करे तो अधिकतर या तो वे अत्यन्त ऊँचा काव्य बन जाएँगी और या अत्यन्त नीची। जायसी की पद्मावती एवं नागमती ने सती होते समय जो वचन कहे थे[3] वे अत्यन्त ऊँचे काव्य के उदाहरण हैं और

[1] इन प्रतीकवादी उपमानों का प्रयोग मध्ययुग के हिंदी साहित्य में तो कम मिलता है परंतु आधुनिक हिंदी काव्य में उन की संख्या अत्यधिक बढ़ गई है।

[2] जा० ग्रं० पृष्ठ ३३९

[3] वही पृष्ठ ३३९

लक्ष्मी ने रत्नसेन को अपनी ओर आकृष्ट करते समय जो कुछ कहा था[1] वह हीन काव्य का उदाहरण है। जायसी ने इस शैली को कम अपनाया है। वह जहाँ भी मानवी भावनाओं का वर्णन करता है, अधिकतर प्रकृति से सहारा ले लिया करता है।

§८—अन्य वस्तुओं एवं कार्यों के प्रकृत उपमान जायसी में कम मिलते हैं। गोरा बादल युद्ध में जायसी कहते हैं:

ओनई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहिं बान मेघ-झरि लाई ॥[2]

यहां पर बाणों उपमान मेघ की बूँदें हैं और बाण छूटने का मेघ की झड़ी लगना।[3]

§९—इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में जायसी ने प्रकृति को उपमान के रूप में रखा है। प्रकृति के सहारे जायसी ने उपदेश भी दिए हैं। इस में प्रकृति दो प्रकार प्रयुक्त हुई है:

(१) जहाँ प्रकृति स्वयं उपदेश दे रही है

(२) जहाँ प्रकृति स्वयं तो उपदेश नहीं दे रही वरन् दृष्टांत के रूप में प्रकृति का उपयोग कर जायसी या उन के पात्र उपदेश दे रहे हैं

§१०—सिंहल के पक्षी नाम-स्मरण का उपदेश व्यंजित कर रहे हैं:

'पीव-पीव' कर लाग पपीहा।[4]

× ×

'तुही-तुही' कर गडुरी जीहा।[5]

[1] वही पृ० २०९

[2] वही पृ० ३२८

[3] दूसरे उदाहरण के लिए देखिए वही पृष्ठ ६३

नमा धवक जोगिन्ह कर कै गेरुआ सब भेसु।

चोस दिसा चारिहु दिसि जानौं फूला टेसु॥

[4] वही पृष्ठ १३

[5] वही

× ×

जागत पंछी [illegible] के भाँति सँग [illegible] ।
[illegible] [illegible] रहे [illegible] ॥[1]

उद्दीपन के रूप में प्रकृति [illegible]:

सुलगइ चाजी पेम [illegible] ।
[illegible] फुलानि के [illegible] होइ [illegible] ॥[2]

§ ११—उपदेश देने के साथ ही [illegible] वातावरण का भी निर्माण करता है। [illegible] सिंहल द्वीप खंड में कवि ने जो सिंहल द्वीप का [illegible] किया वह सिंहल के वैभव का वातावरण उत्पन्न करता है। तरह तरह के पेड़, तरह तरह के पक्षी वहाँ पर हैं। सारे पेड़ और पक्षी सुन्दर [illegible] मधुर फल दे रहे हैं और मधुर कलरव कर रहे हैं। पेड़ों की सघनता तो देखिए—

बन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
तरिवर सबै मलयगिरि लाई । भइ जग छाँह रैनि होइ आई ॥
मलय-समीर सोहावनि छाहाँ । जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ ॥[3]

और

ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास दिखावै ॥[4]

इस कारण

पथिक जो पहुँचे सहि कै घामू । दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू ॥
जेइ वह पाई छाहँ अनूपा । फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा ॥[5]

प्रकृति की शालीनता का भी एक चित्र देखिए—

फरे आँब अति सघन सोहाए । औ जस फरे अधिक सिर नाए ॥[6]

[1] वही पृष्ठ १४
[2] वही पृष्ठ २९
[3] वही पृष्ठ १३
[4] वही
[5] वही
[6] वही

फलों का स्वाद भी तो पठनीय है—

खिरनी पाकि खाँद असि मीठी ।[1]

और स्वरूप

जामुन पाकि भँवर अस डीठी ।[2]

कहीं कहीं पर कवि ने रस और गन्ध दोनों ही दिए हैं:

पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू । मधु जस मीठ पुहुप जस बासू ॥[3]

कवि पेड़ों की तालिका देता जा रहा है। वह इमली को भी नहीं भूला—

लवँग सुपारी जायफल सब फर फरे अनूप ।
आस पास घन इमिली औ घन तार खजूर ॥[4]

पक्षियों की भी एक सजीव सूची कवि पेश करता है

भोर होत बोलहिं चुहचुही । बोलहिं पाँडुक 'एकै तुही' ॥
सारौं सुआ जो रहचह करहीं । कुरहिं परेवा औ करबरहीं ॥
'पीव पीव' कर लाग पपीहा । 'तुही तुही' कर गडुरी जीहा ॥
'कुहू कुहू' करि कोइलि राखा । औ भिंगराज बोल बहु भाखा ॥
'दही दही' कर महरि पुकारा । हारिल बिनवै आपन हारा ॥
कुहुकहिं मोर सोहावन लागा । होइ कुराहर बोलहिं कागा ॥[5]

कवि अपनी तालिका की पूर्णता इस प्रकार बतलाता है—

जावत पंखी जगत के भरि बैठे अमराउँ ।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउँ ॥[6]

कवि ने बारी का वर्णन भी दिया है—

आस-पास बहु अमृत बारी । फरीं अपूर, होइ रखवारी ।

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही पृष्ठ १३-१४
[6] वही पृष्ठ १५

नारँग नींबू सुरँग जम्भीरा । औ बदाम बहु भेद अँजीरा ॥[१]

यहां पर सभी मेवे एवं फल मिलते हैं—

गलगल तुरँज सदाफर फरे । नारँग अति राते रस भरे ।
किसमिस सेव फरे नौ पाता । दारिउँ दाख देखि मन राता ॥
लागि सुहाई हरफारयौरी । उनै रही केरा कै घौरी ॥
फरे तूत कमरख औ न्यौजी । राय करौंदा बेर चिरौंजी ॥
संगतरा व छुहारा दीठे । और खजहजा खाटे मीठे ॥[२]

कवि ने फुलवारी का भी वर्णन दिया है—

पुनि फुलवारि लागि चहुँ पासा । बिरिछ बेधि चंदन भइ बासा ॥[3]

इस के पश्चात कवि ने फूलों की एक लम्बी सूची दी है ।[४]

ये सूचियां अधिक काव्यात्मक नहीं हैं । पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का तो विचार है कि सूची मात्र देने का काम तो कोई बहेलिया भी कर सकता है ।[५] परन्तु जायसी और उस बहेलिए के सूची देने में बड़ा अन्तर है । जायसी की दृष्टि एक कवि की दृष्टि है । बहेलिए के पास न तो वह काव्यात्मकता ही हो सकती है और न वह मिठास । उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि जायसी ने सूचियां यद्यपि

१ वही पृष्ठ १५

२ वही पृष्ठ १६

3 वही

४ बहुत फूल फूलीं घन बेली ।
केवड़ा चम्पा कुंद चमेली ॥
सुरँग गुलाल कदम औ कूजा ॥
सुगँध बकौरी गंध्रब पूजा ॥
जाही जूही बगुचन लावा ।
पुहुप सुदरसन लाग सुहावा ॥
नागेसर सदबरग नेवारी ।
और सिंगारहार फुलवारी ॥
सो नजरद फूलीं सेवती ।
रूप मंजरी और मालती ॥
मौलसिरी बेइल औ करना ।
सबै फूल फूले बहु बरना ॥
वही

इसी प्रकार फूलों की सूचियां नागमती पद्मावती विवाद खंड में भी मिलती हैं । देखिए वही पृष्ठ २२०–२२१

५ चिंतामणि भाग २ (१९४५)

विशेष वैज्ञानिकता के साथ नहीं दी है तो भी पर्याप्त सरलता के साथ दी है।

ताल-तालाबों का वर्णन तो और भी अधिक काव्यात्मक है—

ताल तलाव बरनि नहिं जाहीं। सूझै वार पार किछु नाहीं ॥[1]

कवि उत्प्रेक्षा भी देता है—

फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहुँ उए गगन महँ तारे ॥[2]

यह अच्छी तो है परन्तु विशेष सजीव नहीं। कवि इस के आगे ही वर्णन में सजीवता भर-सी देता है—

उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी। चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी ॥[3]

परन्तु तालाब का सारा वर्णन ऐसा ही सजीव नहीं है। कवि फिर सूची देने लगता है—

चकई चकवा केलि कराहीं। निसि के बिछोह, दिनहिं मिलि जाहीं ॥
कुररहिं सारस करहिं हुलासा। जीवन मरन सो एकहिं पासा ॥
बोलहिं सोन ढेक बगलेदी। रही अबोल मीन जल-भेदी ॥[4]

ये सारे वर्णन एक मात्र सिंहलद्वीप के ऐश्वर्य का वातावरण उत्पन्न करने के लिए हैं। क्योंकि कवि कह चुका है—

जबहिं दीप नियरावा जाई। जनु कबिलास नियर भा आई ॥[5]

मुसलमानों के स्वर्ग का ऐश्वर्य कवि की स्वप्निल पलकों में समाया हुआ था और वही स्वप्न कवि सिंहल द्वीप में सत्य बनाने का प्रयत्न कर रहा है। और वह इस प्रयत्न में सफल है।

कवि ने यह ऐश्वर्य का वातावरण सिंहल द्वीप में ही उत्पन्न

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ १५
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही पृष्ठ १२

किया है, चित्तौर में नहीं।[१] शायद राजपूताने के मरुस्थल को कवि भूल नहीं गया होगा।

§ १२—घटना वर्णन में प्रकृति का उपयोग पद्मावती एवं आखिरी कलाम दोनों में हुआ है। पद्मावती में सात समुद्र वर्णन एवं आखिरी कलाम में प्रलय के समय का पानी बरसना, जायसी के जन्म-काल का भूकम्प आदि इस के अन्तर्गत आवेंगे। ये वर्णन न तो किसी परिस्थिति विशेष का वातावरण बनाते हैं और न उद्दीपन का कार्य करते हैं। ये अपने आप में स्वतन्त्र वर्णन हैं जिन का सम्बन्ध कथानक से है।

जायसी ने सात समुद्र के वर्णन में बराबर कल्पना से ही काम लिया है। पता नहीं कवि ने स्वयं कभी समुद्र देखा था या नहीं। खार समुद्र का वर्णन तो अत्यन्त साधारण है। उस में कवि यही कहता है कि उस की लहरें ऊँची हैं।[२] क्षीर समुद्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

खीर-समुद का बरनौं नीरू। सेत सरूप, पियत जस खीरू।[३]

कवि कल्पना के नेत्रों से देखकर कहता है—

उलथहिं मानिक, मोती, हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा॥[४]

वास्तव में यह अत्यन्त मधुर चित्र है—

दधि समुद्र का वर्णन करते हुए वह कहता है—

दधि-समुद्र देखत तस दाधा। पेम क लुबुध दगध पै साधा॥[५]

[१] नागमती के बारहमासे में कवि यह बात भूल गया है। इसी कारण 'शायद' शब्द का प्रयोग किया गया है। हो सकता है कि कवि रत्नसेन के चित्तौर को इतना महत्व न देना चाहता हो जितना कि वह पद्मावती के सिंहलद्वीप को दे रहा है।

[२] उठै लहर जनु ताड़ पहारा। चढ़ै सरग औ परै पतारा॥ जा० ग्रं० पृष्ठ ७२

[३] वही

[४] वही

[५] वही

इस समुद्र का कोई भी स्वरूप-चित्र कवि ने नहीं दिया।

उदधि समुद्र का वर्णन कवि ने इस दधि समुद्र के पश्चात किया है। उदधि समुद्र के विषय में जायसी का विचार है कि यह कोई ऐसा समुद्र है जिस का पानी निरन्तर गर्मी के कारण खौलता रहता है। कवि कहता है—

आए उदधि समुद्र अपारा। धरती समुद जरै तेहि झारा॥[1]

कवि इस समुद्र की आग के विषय में यह भी कहता है—

आगि जो उपनी ओही समुंदा। लंका जरी ओह एक बुंदा॥[2]

पता नहीं कवि को यह खबर कहाँ से लगी। रामायण की कहानियों के जितने भी स्वरूप प्रचलित हैं[3] उन में से तो किसी में यह कथा नहीं मिलती।

कवि ने इसके अतिरिक्त और कोई भी वर्णन इस समुद्र का नहीं दिया।

इस के पश्चात सुरा समुद्र का वर्णन है—

सुरा-समुद्र पुनि राजा आवा। महुआ मद-छाता देखरावा॥[4]

इस सागर की एक विशेषता भी कवि ने बतलाई है—

जो तेहि पियै सो भाँवरि लेई। सीस फिरै, पथ पैगु न देई॥[5]

सौभाग्य की बात है कि रत्नसेन ने इस का एक बूँद भी जल नहीं पिया और वह इस सागर को पारकर किलकिला समुद्र में पहुँच गया। किलकिला सागर की विशेषता उस की ऊँची-ऊँची लहरें हैं—

पुनि किलकिला समुद महँ आए। गा धीरज, देखत डर खाए॥[6]

[1] वही पृष्ठ ७३

[2] वही

[3] राम कथा के एक स्वरूप का चित्र तुलसी में है, एक वाल्मीकि में, एक बौद्ध जातकों में। इसी प्रकार राम कथा के कई स्वरूप प्रचलित थे।

[4] जा० ग्रं० पृष्ठ ७३

[5] वही

[6] वही पृष्ठ ७४

डर का कारण भी कवि बतलाता है—

भा किलकिला अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा ॥[1]

कवि चित्र को और स्पष्ट करता है—

उठै लहर परवत कै नाईं। फिरि आवै जोजन सौ ताईं ॥[2]

रंगों में कवि और गहराई देता है—

धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहुँ भा ठाढ़ा ॥[3]

चित्र का एक दूसरा रंग भी कवि दिखलाता है—

नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रंभ समुद जस होई ॥[4]

चित्र का एक तीसरा रंग देखिए—

फिरत समुद जोजन सौ ताका। जैसे भँवै कोहाँर का चाका ॥[5]

समुद्र की भयंकरता के विषय में कवि एक दूसरा पहलू बतलाता है—

गे औसान सबन्ह कर देखि समुद कै बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि ॥[6]

वास्तव में कवि की समुद्र की कल्पना इसी समुद्र के वर्णन में साकार-सी हो उठी है इसी कारण उस ने इस का वर्णन पर्याप्त विस्तार में किया है।

सातवाँ सागर मानसर है। किलकिला की भयंकरता की पृष्ठ-भूमि पर यह सौन्दर्यपूर्ण सागर कवि ने चित्रित किया है—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥[7]

कवि इस सागर का विस्तृत वर्णन भी देता है—

कँवल बिगस तस बिहँसी देहीं। भौंर दसन होइ कै रस लेहीं।

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही पृष्ठ ७६

हँसहिं हंस और करहिँ करीरा । चुनहिँ रतन मुकुताहल हीरा

× × ×

भौंर जो मनसा मानसर, लीन्ह कँवल रस आइ ।
घुन जो हियाव न कै सका, झूर काठ तस खाइ ॥[1]

संक्षेप में सातों सागरों की यही रूप-रेखा है। इन सात सागरों में किलकिला एवं मानसर नामक समुद्र पौराणिक नहीं हैं। सम्भव है मध्ययुग में ये दो नाम जन-साधारण में सात समुद्रों के नामों में प्रचलित हों।

समुद्रों के इस वर्णन में कवि समुद्रों के नामों पर ही गया है। उस ने कभी भी गम्भीरतापूर्वक यह नहीं विचारा कि समुद्र कैसा होता है और ये सात समुद्र कैसे होंगे, देखने की तो बात ही सर्वथा दूसरी है। मानसर नामक एक तालाब भी कवि ने सिंहल दीप में बतलाया है, जिस में रानी पद्मावती का स्नान करना कवि द्वारा वर्णित है।

समुद्रों के वर्णन में कोई भी चमत्कार नहीं है। न तो स्वभावोक्ति ही मिलती है और न अतिशयोक्ति। किलकिला के वर्णन में अवश्य चमत्कार है। परन्तु वह चमत्कार उन्हीं को प्रिय लगेगा जो सादगी को पसन्द नहीं करते और तड़क-भड़क पसन्द करते हैं।

आखिरी कलाम में पानी बरसना आदि कथानक की ही दो-एक प्रारम्भिक घटनाएँ हैं। भयंकर प्रकृति का प्रलय के समय क्या स्वरूप होगा इस की रूप-रेखा कवि ने दी है—

पुनि मैकाइल आयसु पाए। उन बहु भाँति मेघ बरसाए ॥[2]
पहिले लागे परै अँगारा। धरती सरग होइ उजियारा ॥
लागी सबै पिरथिवीं जरै। पाछे लागे पाथर परै ॥[3]

[1] वही

[2] वही

[3] वही पृष्ठ ३९०

पत्थरों की रूप-रेखा भी वह यहीं पर देता है—

सौ सौ मन की एक एक सिला। चलैं पिंड चुरि आवैं मिला॥
बजर-गोट तस छूटैं भारी। टूटैं रूख बिरिख सब झारी॥
परत धमाकि धरति सब हालै। उधिरत उठै सरग लौं नालै॥[1]

और यह—

अधाधार बरसै बहु भाँती। लाग रहै चालिस दिन राती॥[2]

तब—

मकाईल पुनि कहब बुलाई। बरसहु मेघ पिरथिवीं जाई।[3]

मेघों का चित्र भी कवि खींचता है—

उनै मेघ भरि उठिहैं पानी। गरजि गरजि बरसहिं अतवानी॥[4]

और यह—

झरी लागि चालिस दिन राती। घरी न निबुसै एकहु भाँती॥[5]

चालीस दिन लगातार पानी बरसना साधारण बात नहीं है। इस भयंकर वर्षा के परिणाम स्वरूप सारे पर्वत डूब गए—

बूड़हिं परवत मेरु पहारा। जल हुलि उमड़ि चलै असरारा॥
जहँ लगि मगर माछ जित होई। लेइ बहार जाइहि भुइँ धोई॥[6]

फिर सारा पानी सूख गया—

पुनि घटि नीर भँडारे आई। जनौं न बरसा तैस सुखाई॥[7]

परम शक्ति का कोप यहीं पर समाप्त नहीं हो जावेगा।

पुनि इसराफीलहि फुरमाए। फूँकै, सब संसार उड़ाए॥[8]

परिणाम स्वरूप सारा संसार कंपित हो उठेगा मानो हिंडोले में झूल रहा हो—

१ वही
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही पृष्ठ ३९१
६ वही
७ वही
८ वही

दै सुख सूर भरै जो साँसा। डोलै धरती, लपत अकासा॥
भुवन चौदहो गिरि मनु डोला। जानौ घालि झुलाव हिँडोला॥[1]

कवि इस वर्णन में एक क्रम बाँधता है। पहली फूंक में धरा लगभग समतल हो जायगी—

पहिले एक फूँक जो आई। ऊँच-नीच एक-सम होइ जाई॥
नदी नार सब जैहैं पाटी। अस होइ मिले ज्यों ठाढ़ी माटी॥[2]

फिर पर्वत समुद्र में गिर पड़ेंगे—

दूसर फूंकि जो मेरु उड़ैहै। परबत समुद एक होइ जैहै॥[3]

फिर—

तिसरे बजर महाउब, अस भुँइ लेब भहाइ।[4]

परिणाम स्वरूप—

पूरब पछिउँ मुहम्मद एक रूप होइ जाइ॥[5]

प्रकृति इतने प्रलय के पश्चात शान्त हो जावेगी।

जायसी का यह वर्णन भयंकर प्रकृति का है। पद्मावती का किल-किला समुद्र तो एकदम काल्पनिक वस्तु है परन्तु यह वर्णन कुरान के आधार पर है। इस कारण यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह वर्णन वास्तविक नहीं वरन काल्पनिक है, भले ही जायसी की कल्पना न हो। जायसी ने अपने जीवन में भयंकर प्रकृति के दर्शन एक बार किए थे। वे स्वयं उस का वर्णन भी करते हैं:—

भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी॥
आवत उधत-चार विधि ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना॥[6]

इस भूकंप के वेग के विषय में वे कहते हैं—

धरती दीन्ह चक्र बिधि भाईं। फिरे अकास रहँट की नाईं॥

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही पृष्ठ ३८४

गिरि-पहार मेदिन तस हाला। जस चाला चलनी भरि चाला ॥[१]

कविवर जायसी कहते हैं—

मिरित-लोक ज्यों रचा हिँडोला। सरग पतार पवन-खट डोला ॥[२]

वे आगे वर्णन करते हैं—

गिरि पहार परबत ढहि गए। सात समुद्र कीच मिल भए ॥
धरती फाटि, छात भहरानी। पुनि भइ मया जो सिष्टि दिठानी ॥[३]

उद्धत प्रकृति भूकम्प के पश्चात शांत नहीं हो गई। सूर्य-ग्रहण भी पड़ा था—

सो अस बपु रै गहनै लीन्हा। औ धरि बाँधि चँडाले दीन्हा ॥
गा अलोप होइ, भा अँधियारा। दीखै दिनहि सरग महँ तारा ॥[४]

यह सूर्य-ग्रहण सबेरे के समय ही पड़ा था—

उवते झाँपि लीन्ह, धुप चाँपे।[५]

परिणाम स्वरूप—

लाग सरब जिउ थर थर काँपै।[६]

और—

जिउ कहँ परे ज्ञान सब झूठे। तब होइ मोख गहन जौ छूटे ॥[७]

इन दो उद्धताचारों की तो बचपन की अनुभूति भी जायसी की थी। परन्तु प्रलय की आग बरसना, पत्थर बरसना, पानी बरसना, और तीव्र तुरही सुनने की अनुभूति जायसी को नहीं थी। वह सारा वर्णन एकमात्र कल्पना के सहारे एवं कुरान पर अपने को आधारित करते हुए किया गया है।

उद्धत प्रकृति के इन वर्णनों में जायसी असफल नहीं हुए हैं

[१] वही
[२] वही
[३] वही
[४] वही पृष्ठ ३८५
[५] वही
[६] वही
[७] वही

यद्यपि यह सही है कि वर्णनों में किसी भी विराटता के दर्शन हमें नहीं होते। अनुभूति विहीन होने के कारण ये वर्णन बहुत ही छोटे-छोटे हैं। परन्तु कुछ न कुछ मार्मिकता तो इन वर्णनों में भी है।

§ १३--मनुष्य के सुख-दुख वर्णन करने के लिए कवि ने प्रकृति का जो उपयोग किया है, वह दो प्रकार का है--

(१) जहाँ पर प्रकृति को कवि ने उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत रखा है और वही काम उस से लिया है

(२) जहाँ पर प्रकृति पर मानव सुख-दुख का प्रभाव दिखलाकर एक ओर तो प्रकृति को संवेदनात्मक दिखलाया है और दूसरी ओर मनुष्य की भावनाओं का वर्णन किया है

पहले प्रकार के वर्णन में नागमती का बारहमासा,[1] वसन्त खंड[2] और षट्ऋतु वर्णन खण्ड[3] आएँगे।

यों तो नागमती को रत्नसेन। के चले जाने का विरह है ही परंतु ऋतुएँ एवं मास उसे विशेष रूप से उद्दीप्त करते रहते हैं। आषाढ़ के धूम्र, श्याम एवं धौरे वर्ण के मेघ,[4] उन की श्वेत ध्वजा की भांति लहराने वाली बग-पंक्ति[5], बिजली की चमक[6], पानी की बूंदें,[7] सभी नागमती के विरह को तीव्र कर रही हैं। सावन का पानी[8], खेतों की भरनी[9], सखियों के हिँडोले[10], हरी-हरी

[1] वही पृष्ठ १७२-१८०

[2] वही पृष्ठ ९१-९७

[3] वही पृष्ठ १६७-१७१

[4] धूम, साम, धौरे घन धाए। वही पृष्ठ १७३

[5] सेत धजा बग-पाँति देखाए। वही

[6] खड़ग-बीजु चमकै चहुँ ओरा। वही

[7] बुंद-बान बरसहिँ घन घोरा। वही

[8] सावन बरस मेह अति पानी। वही

[9] भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥ वही

[10] सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। वही पृष्ठ १७४

भूमि[1], सखियों के कुसुम्भी रंग के वस्त्र[2] ये भी नागमती के विरह को बढ़ाने वाली वस्तुएँ हैं। भादों की अँधेरी रातें[3], बिजली की चमक[4], मेघों की गरज[5], जल, थल में अपार पानी का भरना[6] और धरती और गगन का एक रंग हो जाना।[7] सभी रत्नसेन की याद बढ़ाती है। क्वार में पानी का घटना[8], चातकों के मुख में स्वाति की बूँदें गिरना[9], सारस, हंस और खंजनों की क्रीड़ा[10] नागमती को अधिक विरह संतप्त करती हैं। कातिक में शरद-चांदनी[11] तथा सखियों के दिवाली के खेल[12] नागमती को जलाए-सा देते हैं। अगहन में दिन घटना[13] और रात का बढ़ना[14] सखियों का सुरंगों से रंजित चीर पहिनना[15] नागमती की वेदना को बढ़ाते हैं। पूस में बदन को थर थर कँपा देनेवाला जाड़ा[16], सूर्य का दक्षिणायन होना[17] नागमती के प्राणों को कँपाए देता है। माघ में पड़ने वाला पाला[18], और महावट[19] नागमती

[1] हरियर भूमि—वही

[2] कुसुम्भी चोला—वही

[3] भा भादों दूभर अति भारी।
कैसे भरौं रैन अँधियारी॥ वही

[4] चमक बीजु—वही

[5] घन गरजि तरासा—वही

[6] जल थल भरे अपूर सब—वही

[7] धरति गगन मिलि एक। वही

[8] लाग कुवार, नीर जग घटा। वही

[9] स्वाति बूंद चातक मुख परे।
वही

[10] सरवरि सँवरि हंसि चलि आए।
वही पृष्ठ १७५
सारस कुरलहिं—वही ;
खँजन दिखाए—वही

[11] कातिक सरद चंद उजियारी।
वही

[12] सखि झूमक गावैं अंग मोरी। वही

[13] अगहन दिवस घटा—वही

[14] निसि बाढ़ी—वही

[15] घर घर चीर रचे सब काहू। वही

[16] पूस जाड़ तन थर थर कांपा।
वही पृष्ठ १७६

[17] सूरुज जाय लंक दिसि चांपा। वही।

[18] लागेउ माघ परै अब पाला। वही

[19] नैन चुवहिं जस महवट नीरु—वही

के तन और मन दोनों को तिनके के समान ही अपनी शीतलता से कँपा रहे हैं।[१]

फागुन में तो हवा के झकोरों के कारण चौगुना जाड़ा पड़ता है।[२] तन पीले पत्ते के समान विरह से झकझोरा जा रहा है।[३] वृक्षों का फूलना[४], होली की फाग[५] और चांचरी[६] सभी नागमती की शत्रु बन गई हैं। चैत तो वसन्त का ही महीना है।[७] सखियों की क्रीड़ाएँ [८]मजीठ और लाल लाल टेसू[९], आम की मंजरियां[१०] सभी नागमती के लिए दुखदायी हैं। वैसाख मधुमास की तो कहानी ही दूसरी है। सूर्य का उत्तरायण होना[११] नागमती के दुखों को बराबर बढ़ाता ही जाता है। जेठ की लू,[१२] बवंडर[१३] और आकाश मे अंगारे बरसना[१४] सभी नागमती के लिए असह्य वस्तुएँ हैं।

षट्ऋतु वर्णन पद्मावती के सुख एवं खुशी को चित्रित करता है। रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के पश्चात का यह षट्-ऋतु वर्णन है। नवल वसन्त पद्मावती के लिए तो अत्यन्त सुखदायी वस्तु

१ तुम बिनु कांपै धनि हिया तन तिन-
उर भा डोल। वही

२ फागुन पवन झकोरा बहा।
चौगुन सीउ जाइ नहीं सहा।
वही पृष्ठ १७७

३ तन जस पियर पात भा मोरा।
तेहि पर विरह देइ झकझोरा॥
वही

४ भई ओनंत फूलि फरि साखा।
वही

५ फागु करहिं सब। वही

६ चाँचरि जोरी। वही

७ चैत बसंता। वही

८ होइ धमारी। वही

९ भंजि मजीठ। वही,
टेसु बन राता। वही

१० बौरे आम फरै अब लागे।
वही

११ सूरुज जरत हिवंचल ताका।
वही

१२ जेठ जरै जग चलै लुवारू।
वही पृष्ठ १७८

१३ उठहिं बवंडर। वही

१४ परहिं अँगार। वही

है। [1]भ्रमर की पुष्पों के साथ क्रीड़ा, [2]फाग खेलना[3] पद्मावती के सुखों को बढ़ाने वाली वस्तुएँ हैं। जेठ असाढ़ के आम [4]भी उसे सुखदायी हैं। सावन में तो गगन सुहावना है, [5]भूमि सुहावनी है, [6]कोकिल बोलती है, [7]बग-पंक्ति आकाश में उड़ती है, [8]बिजली चमकती है [9]और बरसते हुए पानी की बूँदें उस के प्रकाश में सोने की-सी बन जाती है, [10] भूमि हरी है,[11] पद्मावती स्वयं लाल रंग के वस्त्र पहिन कर रत्नसेन के साथ हिंडोले में झूलती है। [12]सभी बातें उस के हर्ष को बढ़ा रही हैं। शरद ऋतु की चांदनी, [13]खंजन [14]भी पद्मावती को सुखदायी है। हेमंत ऋतु की शीतलता तो प्रेयसि और प्रियतम के लिए सोहागे के समान है। [15]शिशिर की शीतलता भी पद्मावती को रत्नसेन के घर पर ही होने के कारण नहीं लग सकती।[16]

[1] बसंत नवल ऋतु। वही पृष्ठ १६८

[2] भौंर पुहुप सँग करहिं धमारी। वही

[3] होइ फाग भलि चाँचरि जोरी। वही

[4] आम सदाफर डार। वही पृष्ठ १६९

[5] गगन सोहावन। वही

[6] भूमि सुहाई। वही

[7] कोकिल बैन। वही

[8] पाँति बग छूटी। वही

[9] चमक बीजु। वही

[10] बरसै जल सोना। वही

[11] हरियर भूमि। वही

[12] धनि पिउ संग हिंडोला। वही

[13] आइ सरद ऋतु अधिक पियारी।
आसिन कातिक ऋतु उजियारी। वही

[14] देद खँजन दिखावा। वही पृष्ठ १७०

[15] ऋतु हेमँत सँग पिएउ पियाला।
अगहन पूस सीत सुख-काला॥
धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा।
दुहुँह अंग एकै मिलि लागा॥ वही

[16] आइ सिसिर ऋतु, तहाँ न सीऊ।
जहाँ माघ फागुन घर पीऊ॥ वही

इस प्रकार जायसी ने उद्दीपन के रूप में रखकर प्रकृति के दो स्वरूप हमारे सामने रखे हैं—

✓(१) दुखदायी

✓(२) सुखदायी

नागमती का बारहमासा पहले के अंतर्गत और पद्मावती का षट्-ऋतु वर्णन दूसरे के अन्तर्गत रखे जाएँगे। वसन्त वर्णन आदि भी उद्दीपन के अन्तर्गत ही रखे जाएँगे।

इन स्थलों के अन्तर्गत किए गए प्रकृति वर्णन को कवि ने अपना मुख्य अभिप्रेय नहीं बनाया। बारहमासे में बारह मासों के नाम और उन की साधारण विशेषताएँ बतलाकर अपने ऋतु वर्णन के कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली है और नागमती की भावनाओं पर कवि जोर देने लगा है। षट्-ऋतु वर्णन में तो कवि ऋतु वर्णन की ओर से और भी लापरवाह हो गया है। वहाँ प्रकृति वर्णन और भी कमज़ोर है। कवि ने यही दिखलाया है कि उस ऋतु का क्या प्रभाव पद्मावती के जीवन पर पड़ता है। परन्तु ऋतु वर्णन कमजोर होने के कारण यह प्रभाव-वर्णन भी कमज़ोर हो गया है। बारहमासे का ऋतु-वर्णन इस वर्णन से अच्छा है इस कारण नागमती का बारहमासा अच्छा हो गया है। इस्लाम धर्म को माननेवाले, कुरान में विश्वास रखने वाले सुख को वैसा चित्रित नहीं कर सकते जैसा कि दुख को। संसार की क्षण-भंगुरता एवं संसार की उदासीनता हो उन्हें अधिक दिखाई पड़ती है। संसार के सौंदर्य की ओर से तो उन की आँखें मुँदी ही रहती हैं।

बारहमासे के वर्णन में कवि काल को तो नहीं भूला परन्तु देश को अवश्य ही भूल गया है। कहाँ तो राजपूताने के मरुस्थल में बरसने वाली दो चार बूँदें और कहाँ कवि की उक्ति—

जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी॥[1]

[1] वही पृष्ठ १७४

और

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥[1]

और

भनि सूखी भरे भादों माहां।[2]

और

[illegible] जग भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक।[3]

[illegible] बिलकुल ही भूल गया कि राजपूताने में स्थित चित्तौर में [illegible] है, गंगा जमुना के दोआब के निकट जायस में या [illegible] के [illegible] के पास नहीं। राजपूताना पानी न बरसने के कारण [illegible] रहा है और अपनी इस विशेषता के कारण संसार में मशहूर है। फिर भी परम्परा की झोंक में कवि को यह याद नहीं रहा और [illegible] वर्णन [illegible] गया।

[illegible] प्रकार की प्रकृति का वर्णन मानसरोदक खण्ड में मिलता है। [illegible] ने पद्मावती के सौन्दर्य से अभिभूत मानसरोदक को दिखलाया है।

[illegible] [illegible] बिमोहा, [illegible] हिलोरहिं लेइ।[4]

[illegible] एक भावना भी रहती है—

[illegible] छुई मकु पावों [illegible] [illegible] लहरहि लेइ।[5]

[illegible] के [illegible] पर संसार में जो अन्धकार हो गया है [illegible] कवि ने प्रकृति पर इस का प्रभाव दिखलाकर ही [illegible] है—

[illegible] [illegible] पुकारे, [illegible] [illegible], हो नाहँ।
[illegible] [illegible] [illegible] नाहँ, [illegible] [illegible] जल माहँ।[6]

१ [illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]
४ वही पृष्ठ २८
५ वही
६ वही पृष्ठ २९

ईश्वर का ऐश्वर्य वर्णन के लिए भी कवि ने प्रकृति का सहारा लिया है—

कीन्हेसि घनार कसतुरी बेना। कीन्हेसि भीमसेन औ चीना॥
कीन्हेसि नाग, जो मुख विष बसा। कीन्हेसि मंत्र, हरै जेहि डसा॥[1]

कवि आगे कहता है—

कीन्हेसि मधु आवै लै माखी। कीन्हेसि भौंर, पंखि औ पाँखी॥[2]

कवि का यह प्रकृति वर्णन बहुत ही कमजोर है। इसे प्रकृति वर्णन यदि न कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा। वास्तव में यहाँ पर कवि ने प्राकृतिक वस्तुओं का एक वर्गीकरण तैयार किया है और उस में नाम गिना दिए हैं। न तो कोई लालित्य है और न माधुर्य। सारा प्रकृति वर्णन एक-दो-तीन-चार गिनती गिनना प्रतीत होता है। ईश्वर का ऐश्वर्य दिखलाने के लिए भी प्रकृति का एक सुन्दर मनोरम चित्र उपस्थित किया जा सकता था, और उस में काव्यात्मकता लाई जा सकती थी। परंतु कवि का ध्यान ही इस ओर नहीं गया। जायसी ग्रंथावली का पाठक जानता है कि यह कवि की शक्ति के बाहर न था परन्तु जहाँ लापरवाही हो वहाँ पर शक्ति की सीमा होने और न होने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता। इसे हम कवि की भूल कहेंगे।

संक्षेप में कवि के प्रकृति वर्णन की यही रूप रेखा है। जायसी का सारा प्रकृति वर्णन प्रकृति की स्वाभाविक सुन्दरता का चित्र न खींचता-वरन्-प्रकृति के कुछ स्थल चुनकर अधिकतर उन के मनमाने एवं मन-की-कृत्रिमता को भानेवाले स्थलों का चित्र खींचता है। 'ह... यर सबै प्रकास दिखावै'[3] कवि की इस वृत्ति का स्पष्ट परिचय देता है। विरह संतप्त नागमती के लिए राजस्थान का सूखे सावनवाला उज...

[1] वही पृष्ठ २

[2] वही

[3] वही पृष्ठ १२

रेगिस्तान भी उद्दीपन ही करता। फिर भी देश को भूलकर परम्परा में फँसना इसी वृत्ति का परिचायक है।

ऊपर दिखाया गया है कि आलम्बन के रूप में भी प्रकृति वर्णन जायसी ने किया है। सात समुद्र वर्णन एवं प्रलय वर्णन आलम्बन के अन्तर्गत ही आएँगे। यह सच है कि ये प्रकृति वर्णन एकदम स्वतन्त्र नहीं हैं परन्तु यह सोचना ही गलत है कि किसी प्रबन्ध काव्य में कोई वस्तु अपने आप में एकदम स्वतन्त्र होकर स्थान पा सकती है। इसी कारण जायसी की पद्मावती और आखिरी कलाम में प्रकृति वर्णन अपने आप में स्वतन्त्र नहीं। हाँ, यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन में कुछ स्थल किसी भी प्रकार उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते। रसशास्त्री इन्हें आलम्बन ही कहेंगे। मध्ययुग के हिन्दी-साहित्य के लिए जायसी की यह महत्वपूर्ण देन है।

युद्ध

जायसी-ग्रन्थावली में जिन युद्धों का वर्णन है, उन में से निम्न-लिखित उल्लेखनीय हैं—

१—अलाउद्दीन एवं रत्नसेन युद्ध

२—गोरा-बादल एवं अलाउद्दीन युद्ध

३—रत्नसेन एवं देवपाल युद्ध

४—अलाउद्दीन एवं गोरा-बादल युद्ध

पहले युद्ध में अलाउद्दीन ने पद्मावती को प्राप्त करने के लिए रत्नसेन पर चढ़ाई की है। अलाउद्दीन एक अधम पात्र के रूप में है, अतः न तो पाठक की और न कवि की हां सहानुभूति उस के साथ है; परन्तु कथानक के मोड़ों से कवि भी लाचार है और पाठक भी। रत्न-सेन उसे पूर्ण पराजित नहीं कर सका।

दूसरा युद्ध उस समय का है, जब कि अलाउद्दीन रत्नसेन को बाँधकर दिल्ली ले गया और उस की तथा देवपाल की दूतियाँ पद्मावती के पास उन के प्रणय-सन्देश लेकर आईं। पद्मावती अपने चारों तरफ जाल बिछते देखकर गोरा-बादल से प्रार्थना करती है, और वे रत्नसेन को छुड़ा लाते हैं। लौटते समय जब कि गोरा-बादल रत्नसेन को लिए भागे आ रहे हैं, अलाउद्दीन एवं गोरा-बादल में युद्ध होता है।

तीसरा युद्ध देवपाल एवं रत्नसेन के बीच दूती द्वारा रत्नसेन की अनुपस्थिति में पद्मावती के पास प्रणय-सन्देश भेजे जाने के कारण होता है।

चौथे युद्ध का वास्तव में एक पंक्ति में ही अन्त कर दिया गया है। जब कि पद्मावती रत्नसेन के साथ सती हो जाती है, अलाउद्दीन चित्तौर पर चढ़ाई करता और विजय प्राप्त करता है। चारों युद्ध एक ही ऐतिहासिक वर्णनात्मक शैली में वर्णित हैं।

इन युद्ध-वर्णनों में निम्न लिखित वस्तुओं का वर्णन मिलता है—अमीर-उमरा एवं गढ़पति, घोड़े, हाथी, सैनिकों का आगे बढ़ना, अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध। अमीर-उमरा का वर्णन सूचियों के रूप में मिलता है। जायसी कहते हैं कि अलाउद्दीन ने—

लिखा पत्र चारिहु दिसि धाए। जावत उमरा बेगि बुलाए॥[1]

वे युद्ध के लिए चलते हैं—

चले जो उमरा मीर बखाने। का बरनौं जस उन्ह कर बाने॥
खुरासान औ चला हरेऊ। गौर बँगाला रहा न कोऊ॥
जावत बड़ बड़ तुरुक कै जाती। माँडौवाले औ गुजराती॥
पटना, उड़िसा के सब चले। लेइ गज हस्ति जहाँ लगि भले॥
कवँरू, कामता औ पिंडवाए। देवगिरि लेइ उदयागिरि आए॥
चला परबती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ॥[2]

रत्नसेन भी अकेला नहीं है। जो हिन्दू राजा अलाउद्दीन के दरबार में सेवा करते थे, उन्हों ने भी बादशाह से प्रार्थना की :—

है चितउर हिंदुन्ह कै माता। गाढ़ परे तजि जाइ न नाता॥
रतनसेन तहँ जौहर साजा। हिंदुन्ह माँझ आहि बड़ राजा॥[3]

वे यह भी कहते हैं —

हिंदुन्ह केर पतँग कै लेखा। दौरि परहिं अगिनी जहँ देखा॥[4]

[illegible]

जिस से

पुनि हम जाइ मरहिं ओहि ठाऊँ। मेटि न जाइ लाज सों नाऊँ ॥[1]

इस बात पर बादशाह ने उन को मरवा नहीं डाला, वरन् उन्हें जाने की आज्ञा और तीन दिन का अवसर दिया—

दीन्ह साह हँसि बीरा, और तीन दिन बीचु।
तिन्ह सीतल को राखै, जिनहिं अगिनि महँ मीचु ॥[2]

रत्नसेन के पास बहुत से और राजा आ गए। जायसी उन की सूची देते हैं—

तोवँर, बैस, पवाँर सो आए। औ गहलौत आइ सिर नाए ॥
पत्ती औ पँचवान बघेले। अगरपार, चौहान, चँदेले ॥
गहरवार, परिहार जो कुरे। औ कलहंस जो ठाकुर जुरे ॥[3]

इस प्रकार दोनों दलों में काफ़ी अमर-उमरा और गढ़पति आ गए थे। अलाउद्दीन के सामने पद्मावती का लोभ था और रत्नसेन के सामने अपनी मर्यादा एवं लज्जा की रक्षा करने की समस्या। दोनों ही अधिक-से-अधिक तैयारी कर विजय प्राप्त करना चाहते थे। कवि ने इन अमीर-उमराओं और गढ़पतियों की सूची तो दी है; लेकिन और कुछ भी नहीं दिया। न तो उन के शौर्य-पराक्रम के विषय में कुछ बताया है और न इस लड़ाई के लिए किस ने क्या सजधज की—इस का ही वर्णन किया। इसी कारण इस सूची में कोई भी मनोरंजकता नहीं है। इस के मूल में एक वजह यह भी हो सकती है कि कवि को इन व्यक्तियों के विषय में अति स्वल्प ज्ञान हो।

कवि ने घोड़ों का भी वर्णन सूचीनुमा ढंग पर किया है।

चले पंथ बेसर सुलतानी। तीख तुरंग बाँक कनकानी ॥
कारे, कुमइत, लील, सुपेते। खिंग, कुरंग, बोज, दुर केते ॥

[1] वही [2] वही
[3] वही

अवलक, अरबी, लखी, सिराजी । चौधर चाल, समँद भल, ताजी ॥
किरमिज, नुकरा, जरदे, भले । रूपकरान, बोलसर, चले ॥
पँचकल्यान, सँजाव, बखाने । महि सायर सब चुनि चुनि आने ॥
मुशकी औ हिरमिजी एराकी । तुरकी कहे भोथार बुलाकी ॥
बिखरि चले जो पाँतहि पाँती । बरन बरन औ भाँतिहि भाँती ॥[1]

§ ४—इस सूची के पश्चात् कवि ने इन अश्वों का वर्णन भी किया है:

सिर औ पूँछ उठाए चहुँ दिसि साँस ओनाहि ।
रोष भरे जस बाउर पवन-तुराष उड़ाहिं ॥[2]

इस दोहे में अवश्य काव्यात्मकता है। इस में घोड़ों का एक सुन्दर चित्र है, जो स्थिर नहीं, वरन् गतिमय घोड़ों का है। रत्नसेन के घोड़ों का वर्णन करते समय जायसी सतर्क कूची से रंगों का प्रयोग करते हैं—

करहिं तुखार पवन सौं रीसा । कंध ऊँच, असवार न दीसा ॥[3]

ऊँचाई का वर्णन यहीं पर समाप्त नहीं होता। वे कहते हैं—

का बरनौं अस ऊँच तुखारा । दुइ पौरी पहुँचै असवारा ॥[4]

कवि और आगे अंगों का वर्णन करता है—

बाँधे मोरछाँह सिर सारहिं । भाँजहिं पूँछ चँवर जनु ढारहिं ॥[5]

उन की सजावट के विषय में वह कहता है :—

सजे सनाहा, पहुँचीं, टोपा । लोहसार पहिरे सब ओपा ॥
तैसे चँवर बनाए औ घाले गलझंप ।
बँधे सेत गजगाह तहँ, जो देखै सो कम्प ॥[6]

कवि उस घोड़े का भी वर्णन करता है जिस पर रत्नसेन बैठता था मानो वह इंद्र के रथ का घोड़ा हो—

राज तुरंगम बरनौं काहा । आने छोरि इंद्रस्थ-चाहा ।[1]

कवि यह भी कहता है कि वैसा घोड़ा कहीं दिखलाई नहीं पड़ता—

ऐस तुरङ्गम परहिं न दीठी ।[2]

इसी कारण वह व्यक्ति धन्य है जो उसकी पीठ पर बैठता हो—

धनि असवार रहहिं तिन्ह पीठी ।[3]

कवि उस की जाति भी बतलाता है—

जाति बालका समुद थहाए ।[4]

और पूँछ के विषय में वह कहता है—

सेत पूँछ जनु चँवर बनाए ।[5]

कवि ने और भी बातें बतलाई हैं :—

बरन बरन पाखर अति लोने । जानहुँ चित्र सँवारे सोने ॥
मानिक जड़े सीस औ काँधे । चँवर लाग चौरासी बाँधे ॥
सेंदुर सीस चढ़ाए चन्दन खेवरे देह ।[6]

इन पर चढ़ना भी एक गौरव की बात है—

चढ़हि कुँवर मन करहिं उछाहू । आगे घाल गनहिं नहिं काहू ।[7]

§५—जायसी ने हाथियों का भी वर्णन किया है । यह हाथियों का वर्णन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१—अलाउद्दीन के हाथियों का वर्णन

२—रत्नसेन के हाथियों का वर्णन ।

अलाउद्दीन के हाथियों के वर्णन में उस ने घोड़ों के वर्णन की भाँति सूची नहीं बनाई । वह हाथियों के रूप-रंग का वर्णन-मात्र करता है । वे हाथी मेघों की भाँति काले थे—

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही

मेघ साम जनु गरजत आए।[1]

परन्तु वह इस उपमा को देकर ही शान्त नहीं हो जाता, बल्कि कहता है—

मेघहि चाहि अधिक वै कारे। भएउ असूझ देखि अँधियारे।[2]

कवि एक दूसरे उपमान का भी आश्रय लेता है। वह उन्हें भादों की काली रात बतलाता है—

जसि भादौं निसि आवै दीठी।[3]

कवि उन की ऊँचाई भी देता है कि वे आसमान तक ऊँचे थे—

सरग जाइ हिरकी तिन्ह पीठी।[4]

और

ऊपर जाइ गगन सिर धँसा।[5]

इन के मद का भी वर्णन कवि ने दिया है—

चले गयन्द माति मद आवहिँ। भागहिं हस्ति गन्ध जौं पावहिँ।[6]

इन की चाल की गम्भीरता एवं गुरुता के विषय में कवि कहता है कि संसार इन के चलने मे कांप उठता था—

भा भुइंचाल चलत जग जानी। जहँ पग धरहिँ उठै तहँ पानी॥
चलत हस्ति जग काँपा, चाँपा सेस पतार।
कमठ जो धरती लेइ रहा, बैठि गयउ गजभार॥[7]

जहां उस ने रतनसेन के हाथियों का वर्णन किया है, वहां भी सूची का अभाव है और वहां भी उस ने मेघ का उपमान रखा है—

गज मैमँत बिसारे रजबारा। दीसहिँ जनहु मेघ अति कारा।[8]

परन्तु हाथी काले ही नहीं थे—

1 वही पृष्ठ २५३
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही पृष्ठ २५४
6 वही पृष्ठ २५३
7 वही पृष्ठ २५४
8 वही पृष्ठ २६१

सेत गयन्द, पीत औ राते । हरे साम घूमहिँ मदमाते ।[1]

कवि उन की सजावट का भी वर्णन करता है :—

चमकहिं दरपन लोहे सारी । जनु परबत पर परी अँधारी ॥
सिरी मेलि पहिराई सूँड़ें । देखत कटक पायँ तर रूँदें ॥
ऊपर कनक-मँजूसा लाग चँवर औ ढार ।
भलपति बैठे भाल लेइ औ बैठे धनुकार ॥[2]

और—

सोना मेलि कै दन्त सँवारे ।[3]

उन के दाँतों में बड़ी शक्ति है—

गिरिवर टरहिँ सो उन्हके टारे ।[4]

कवि उन की जाति भी बतलाता है—

परबत उलटि भूमि महँ मारहिँ । परे जो भीर पत्र अस भारहिँ ।[5]
अस गयंद साजे सिंघली । मोटी कुरुम-पीठि कलमली ।[6]

इस प्रकार रत्नसेन के हाथियों के वर्णन में और अलाउद्दीन के हाथियों के वर्णन में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

युद्ध में लड़ते हुए हाथियों का वर्णन भी कवि ने दिया है; परन्तु वहाँ पर उस ने यह भेद नहीं बताया कि रत्नसेन के हाथी कौन हैं और अलाउद्दीन के कौन ? कवि कहता है—

हस्ती सहुँ हस्ति हठि गाजहिं । जनु पर्वत पर्वत सों बाजहिं ॥
गरू गयंद न टारे टरहीं । टूटहिँ दाँत माथ गिरि परहीं ॥[7]

× × ×

कोइ हस्ती असवारहि लेहीं । सूँड़ समेटि पायँ तर देहीं ॥

[1] वही
[2] वही पृष्ठ २६१-२
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही पृष्ठ २६३

कोई असवार सिंघ होई मारहिँ । हनि कै मस्तक सूँड़ उपारहिँ ॥
गरब गयंदन्ह गगन पसीजा । रुहिर चुवै धरती सब भीजा ॥
कोइ मैमंत सँभारहिँ नाहीं । तब जानहिँ जब गुद सिर जाहीं ॥
गगन रुहिर जस बरसै धरती बहै मिलाइ ।
सिर धर टूटि बिलाहिँ तस पानी पंक बिलाइ ॥[1]

कवि यहाँ पर अतिशयोक्ति को नहीं छोड़ता—

परवत आइ जो परहिँ तराहीं । दर महँ चांपि खेह मिलि जाहीं ।[2]

§ ६—जायसी ने अलाउद्दीन की सेना के आगे बढ़ने का वर्णन दिया है । यह वर्णन एकदम परम्परागत है । इस में कवि की किसी विशेष मौलिकता के दर्शन दुलभ हैं—

आवै डोलत सरग पतारा । काँपे धरति, न अँगवै भारा ॥
टूटहिँ परवत मेरु पहारा । होइ चकचून उड़हिँ तेहि भारा ॥
सत-खँड धरती होइ पटखण्डा । ऊपर अष्ट भए बरम्हंडा ॥
जेहि पथ चल ऐरावत हाथी । अबहुँ सो डगर गगन महँ आथी ॥
औ जहँ जामि रही वह धूरी । अबहुँ बसै सो हरिचँद-पूरी ॥
गगन छपान खेह तस छाई । सूरुज छपा रैनि होइ आई ॥[3]

कवि इस का उपमान इतिहास से ढूँढ़कर हमारे सामने रखता है—

गएउ सिकंदर कजरिबन, तस होइगा अँधियार ।[4]

वह इस का प्रभाव प्रकृति पर दिखलाता है—

दिनहिँ राति अस परी अचाका । भा रवि अस्त, चन्द्र रथ हाँका ॥
मन्दिर जगत दीप परगसे । पंथी चलत बसेरै बसे ॥
दि के पंखि चरत उड़ि भागे । निसि के निसरि चरै सब लागे ॥
कँवल सँकेता; कुमुदिन फूली । चकवा बिछुरा, चकई भूली ॥[5]

[1] वही
[2] वही
[3] वही पृष्ठ २५९
[4] वही
[5] वही

रात होने के अतिरिक्त भी प्रभाव हुआ है—

चला कटक-दल ऐस अपूरी। अगिलहि पानी, पिछलहि धूरी॥
महि उजरी, सागर सब सूखा। बनखँड रहेउ न एकौ रूखा॥[१]

कवि अतिशयोक्ति मे भी नहीं चूकता—

गिरि पहार सब मिलि गे माटी। हस्ति हेराहिँ तहाँ होइ चाँटी॥[२]

और

जिन्ह घर खेह हेराने, हेरत फिरत सो खेह[३]

रत्नसेन के गढ़ के पास सारी सेना आकर जमा हो गई है। उस का वर्णन कवि ने किया है—

राजा राव देख सब चढ़ा। आव कटक सब लोहे-मढ़ा॥
चहुँ दिसि दिष्ट परा गजजूहा। साम-घटा मेघन्ह अस रूहा॥
अध ऊरध कछु सूझि न आना। सरग लोक घुम्मरहिँ निसाना॥[४]

रानियाँ भी इस सेना को देखती हैं और कहती हैं कि जिस का इतना वैभव है वह सुलतान धन्य है—

चढ़ि धौराहर देखहिँ रानी। धनि तुइँ अस जाकर सुलतानी॥[५]

परन्तु रत्नसेन की रानियाँ अलाउद्दीन की ऐसी प्रशंसा करें यह असंभव है। इसी कारण कवि उन के मुख से दूसरी पंक्ति में कहलाता है कि वह रत्नसेन धन्य है जिस से लड़ने के लिए शत्रु को इतनी तैयारी करनी पड़ी—

की धनि रतनसेन तुइँ राजा। जा कहँ तुरुक कटक अस साजा॥[६]

और वे रानियाँ सेना का वर्णन करने लगती हैं—

बैरख ढाल केरि परछाहीं। रैनि होति आवै दिन माहीं॥

[१] वही पृष्ठ २६०
[२] वही
[३] वही
[४] वही
[५] वही
[६] वही

अंधकूप भा आवै, उड़त आव तस छार ।
ताल तलावा पोखर धूरि भरी जेवनार ॥[1]

गोरा-बादल के युद्ध में कवि ने अलाउद्दीन की सेना का वर्णन इस प्रकार किया है—

ओनवत आइ सेन सुलतानी । जानहुँ परलय आव तुलानी ॥
लोहे सेन सूझ सब कारी । तिल एक कहूँ न सूझ उघारी ॥
खड़ग फोलाद तुरुक सब काढ़े । धरे बीजु अस चमकहिँ ठाढ़े ॥
पीलवान गज पेले बाँके । जानहुँ काल करहिं दुइ फाँके ॥
जनु जमकात करहिँ सब भवाँ । जिउ लेइ चहहिँ सरग अपसवाँ ॥
सेल सरप जनु चाहहिँ डसा । लेहिँ काढ़ि जिउ मुख विष-बसा ॥[2]

§ ७—कवि ने अस्त्रों का भी वर्णन अत्यन्त सजीवता से किया है—

चली कमानैं जिन्ह मुख गोला । आवहिँ चली, धरति सब डोला ॥
लागे चक्र वज्र के गढ़े । चमकहिँ रथ सोने सब मढ़े ॥[3]

तोपों का विस्तार भी वह देता है—

तिन्ह पर विषम कमानैं धरीं । साँचे अष्टधातु कै ढरीं ॥
सौ सौ मन वै पीयहि दारू । लागहिँ जहाँ सो टूट पहारू ॥
माती रहहिं रथन्ह पर परी । सत्रुन्ह महँ ते होहिँ उठि खरी ॥
जौ लागै संसार न डोलहिं । होइ भुइकम्प जीभ जौ खोलहिं ॥[4]

कवि अतिशयोक्ति का सहारा लेकर कहता है—

सहस-सहस हस्तिन्ह कै पाँती । खींचहिँ रथ, डोलहिँ नहिँ माती ॥[5]

और फिर रूपक का सहारा लेता है—

कहौं सिंगार जैस वै नारी । दारू पियहिं जैसि मतवारी ॥
उठै आगि जौ छाँड़हि साँसा । धुआँ जौ लागै जाइ अकासा ॥

[1] वही
[2] वही पृष्ठ ३२९
[3] वही पृष्ठ २५७
[4] वही पृष्ठ २५६-८
[5] वही

सेंदुर आगि सीस उपराहीं। पहिया तरिवन चमकत जाहीं॥
कुच गोला दुइ हिरदय लाए। अंचल धुजा रहहिँ छिटकाए॥
रसना लूक रहहिँ मुख खोले। लंका जरै सो उनके बोले॥
अलक जँजीर बहुत जिउ बाँधे। खींचहिँ हस्ती, टूटहिं काँधे॥

तिलक पलीता माथे, दसन बज्र के बान।
जेहि हेरहिँ तेहि मारहिँ, चुरकुस करहिँ निदान॥[1]

कवि ने उस युग के अन्य अस्त्रों के नाम भी दिए हैं—

भइ बगमेल सेल घन घोरा।[2]
× × ×
मेलेसि सांग आइ बिष-भरी।[3]
× × ×
हाथन्ह गहे खड्ग हरद्वानी।[4]

§ ८—परन्तु उस ने इन का कोई सुन्दर काव्यात्मक वर्णन नहीं दिया। कवि की भावुकता को केवल तोप ही झकझोर सकी। युद्ध के वर्णन में कवि ने बड़ी चतुराई दिखाई है। वह रत्नसेन तथा अलाउद्दीन-युद्ध में पता नहीं किस ऐतिहासिक अथवा पौराणिक युद्ध का प्रसंग देता हुआ कहता है :—

आठों बज्र जूझ जस सुना। तेहि तें अधिक भएउ चौगुना॥
बाजहिँ खड्ग उठै दर आगी। भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी॥[5]

वह इस युद्ध को उपमा के द्वारा सजीव बनाता है—

चमकहिँ बीजु होइ उजियारा। जेहि सिर परै होइ दुइ फारा॥[6]

और आगे कहता है—

[1] वही
[2] वही पृष्ठ ३२९
[3] वही पृष्ठ ३३७
[4] वही पृष्ठ ३२८
[5] वही पृष्ठ २६४-५
[6] वही

झपटहिँ कोपि परहिँ तरवारी । औ गोला ओला जस भारी ॥[१]

कवि खून-खच्चर का भी वर्णन करता है—

सीस कन्ध कटि-कटि भुइँ परे । रुहिर सलिल होइ सायर भरे ॥
अनँद बधाव करहिँ मसखावा । अब भखनेहूँ जनम जनम कहँ आवा ॥
चौंसठि जोगिनि खप्पर पूरा । बिग जंबुक घर बाजहिँ तूरा ॥
गिद्ध चील सब माँड़ो छावहिँ । काग कलोल करहिँ औ गावहिँ ॥[२]

अलाउद्दीन एवं गोरा-बादल के युद्ध का वर्णन इस से सजीवतर है:

ओनई घटा चहूँ दिसि आई । छूटहिँ बान मेघ झरि लाई ॥
हाथन्ह गहे खड़ग हरद्वानी । चमकहिं सेल बीजु कै बानी ॥
रुण्ड-मुण्ड अब टूटहिं, स्यो बखतर और कूंड़ ।
तुरय होहिं बिनु काँधे, हस्ति होहिँ बिनु सूँड़ ॥[3]

कवि कितना सुन्दर चित्र देता है—

भइ बगमेल सेल घन घोरा । औ गज-पेल, अकेल सो गोरा ॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार पहार जूझकर काँधा ॥
लगे मरै गोरा के आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे ॥[४]

वह अपने रंगों को दृष्टान्त एवं उत्प्रेक्षा का सहारा लेकर गाढ़ा करता है—

जैसे पतंग आगि धँसि लेई । एक मुवै दूसर जिउ देई ॥[५]

वह शीघ्र ही इस शैली को परिवर्त्तित करता है और अभिधात्मक वर्णन की ओर पग बढ़ाता है—

टूटहिं सीस, अधर धर मारै । लोटहिँ कंधहिँ कंध निरारै ॥
कोई परहिँ रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहिँ माते ॥
कोइ खुरखेह गए भरि भोगी । भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ॥[६]

१ वही
२ वही
३ वही पृ ३२८
४ वही पृष्ठ ३२९
५ वही
६ वही

कवि एक द्वन्द्व-युद्ध का भी वर्णन करता है—

... ... सरजा सारदूल पहँ आवा ॥

सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ । परा खड़ग जनु परा निहाऊ ॥

वज्र क साँग वज्र कै डाँड़ा । उठी आगि तस बाजा खाँड़ा ॥

जाना वज्र वज्र सौं बाजा । सब ही कहा परी अब गाजा ॥

दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा । सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा ॥

तीसर खड़ग कूँड़ पर लावा । काँध गुरुज हुत, घाव न आवा ॥

तस मारा हठि गोरै उठी वज्र कै आगि ।

कोइ नियरे नहिं आवै सिंघ सदूरहि लागि ॥

तब सरजा कोपा बरिबण्डा । जनहु सदूर केर भुजदण्डा ॥

कोपि गरजि मारेसि तस बाजा । जानहु परी टूटि सिर गाजा ॥

ठाँठर टूट फूट सिर तासू । स्यो सुमेरु जनु टूट अकासू ॥

धमकि उठा सब सरग पतारू । फिरि गइ दीठि फिरा संसारू ॥

भइ परलय अस सब ही जाना । काढ़ा खड़ग सरग नियराना ॥

तस मारेसि स्यो घोड़ै काटा । धरती फाटि, सेस फन फाटा ॥[1]

यह कितना सजीव वर्णन है ।

§ ६—इस प्रकार कवि का यह युद्ध-वर्णन बड़ा सजीव है । रत्नसेन-देवपाल-युद्ध तथा बादल-अलाउद्दीन-युद्ध अति संक्षिप्त है । इसी कारण वे कुछ निर्जीव-से हैं । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मध्य-युग में डिंगल को छोड़कर हिन्दी में जो युद्ध-वर्णन किया गया है, उस में सब से पहला प्राप्त युद्ध-वर्णन जायसी का ही है, जिस पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है ।

---

[1] वही पृष्ट ३३१-२

सामाजिक कृत्य

§ १—मलिक मुहम्मद जायसी ने तीन सामाजिक कृत्यों का वर्णन अपने ग्रंथों में दिया है—

१. विवाह

२. भोज

३. जौहर

§ २—विवाह का वर्णन रत्नसेन पद्मावती विवाह वर्णन के रूप में है। पहले लग्न रखी गई अर्थात् दिन निश्चय किया गया और फिर सिंहल द्वीप में रत्नसेन और पद्मावती के विवाह का निमंत्रण दिया गया—

लगन धरा औ रचा बियाहू। सिंघल नेवत फिरा सब काहू॥[1]

उसके पश्चात् मंडप बनाया गया और पृथ्वी पर लाल वस्त्र बिछाए गए—

रचि रचि मानिक माँड़व छावा। औ भुँइ रात बिछाव बिछावा॥[2]

उस में चंदन के खंभे लगाए गये और उन पर माणिक के दीपक रखे गए—

चंदन खंभ रचे बहु भाँती। मानिक दिया बरहिं दिन राती[3]

घर-घर पर बंदनवार लगाये गये और नगर भर में गीत गाये जाने लगे—

घर घर बंदन रचे दुवारा। जावत नगर गीत झनकारा॥[4]

रत्नसेन को भी अच्छे अच्छे कपड़े पहिनाए गए और उस का

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ १३७

[2] वही

[3] वही

[4] वही

योगी का वेप बदल दिया गया। वह मौर बांध कर और सिर पर छत्र लगा कर सुन्दर घोड़े पर सवार होकर दूल्हा बनकर धूम-धाम से चला।[1] राजमहल के पास आने पर मंगलाचार किया गया—

बाजत आवै माँदी जहँ होइ मंगलाचार।[2]

चित्रसारी में बरात को टिकाया गया—

जहँ सोने कर चित्तर सारी। लेइ बरात सब तहाँ उतारी॥[3]

और भोजन कराया गया।[4]

भोजन के पश्चात् विवाह हुआ। पहले मंडपों के नीचे चौक पूरा गया और कंचन के कलशों में पानी रखा गया—

... .। रतन चौक पूरा तेहि माहाँ॥
कंचन कलस नीर भरि धरा।...............................[5]

उस के पश्चात् पद्मावती वहां पर रत्नसेन के पास लाई गई—

इंद्र पास आनी अपछरा।[6]

फिर वर और वधू की गांठ जोड़ी गई—

[1] कवि ने इस का वर्णन नहीं किया परंतु इसके संकेत निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से मिलते हैं—
कुँवर सहस दस आइ सभागे। बिनय करहिं राजा सँग लागे॥
जाहि लागि तन साधहु जोगू। लेहु राज औ मानहु भोगू॥
मंजन करहु, भभूत उतारहु। करि अस्नान चित्र सब सारहु॥
काढ़हु मुद्रा फटिक अभाऊ। पहिरहु कुण्डल कनक जराऊ॥
छोरहु जटा फुलायल लेहू। झारहु केस मकुट सिर देहू॥
काढ़हु कंथा चिरकुट लावा। पहिरहु राता दगत सोहावा॥
पाँवरि तजहु देहु पगपौरि जो बांक तुखार।
बांधि मौर सिर छत्र देहिबेगि होहु असवार।
वही

[2] वही पृष्ठ १३८

[3] वही

[4] होइ लाग जेवनार पसारा।
वही

[5] वही पृष्ठ १४२

[6] वही

गांठ दुलह दुलहिनि कै जोरी ।[1]

कन्या की राशि का नाम लेते हुए पंडितों ने वेद मंत्रों का उच्चारण किया—

वेद पढ़ैं पंडित तेहि ठाऊँ । कन्या तुला रासि लेइ नाऊँ ॥[2]

पद्मावती के हाथ में जयमाल दी गई । वह उस ने रत्नसेन के गले में डाल दी । रत्नसेन ने उसे पद्मावती को फिर पहिना दिया[3] । फिर अपनी अंजली में पानी भर कर रत्नसेन को पद्मावती ने जल दिया । रत्नसेन ने उसे ग्रहण कर लिया और फिर पद्मावती को ही लौटा दिया कवि ने इस का काव्यात्मक तथा सांकेतिक वर्णन किया है—

चाँद के हाँथ दीन्ह जयमाला । चाँद आनि सूरुज गिउ घाला ॥
सूरुज लीन्ह, चाँद पहिराई । हार नखत तरइन्ह स्यों पाई ॥
पुनि धानि भरि अंजुलि जल लीन्हा । जोबन जनम कंत कहँ दीन्हा ।[4]

फिर पाणि-ग्रहण हुआ—

१ वही पृष्ठ १४३

२ वही

३ पं० राम चन्द्र शुक्ल ने 'लीन्ह' शब्द के बाद एक कामा लगा दिया है। इस कारण अर्थ यह निकलता है कि रत्नसेन ने पद्मावती को सखियों से एक माला लेकर पद्मावती को पहिना दी । शैरिफ महोदय ने भी यही अर्थ दिया है । [देखिए पद्मावती-शिरेफ (१९४४) पृष्ठ १७७] परंतु यदि वह कामा निकाल दिया जावे तो अर्थ यह निकलेगा कि सूर्य (रत्नसेन) ने तारों (सखियों) द्वारा दी गई और चांद (पद्मावती) द्वारा पहिनाई गई माला स्वीकार कर ली । यहाँ एक बात यह भी याद रखना चाहिए कि कामा निकाल देने पर भी राम चंद्र शुक्ल का अर्थ निकल सकता है । साधारणतया विवाह संस्कार में तो स्त्री ही पुरुष को जयमाला पहिनाती है, पुरुष नहीं । इसी कारण शुक्ल जी तथा शिरेफ महोदय के अर्थ पर संदेह उठता है ।

४ जा० ग्रं० पृष्ठ १४३

कंत लीन्ह दीन्हा धनि हाथा ।[1]

और गांठ जोड़ी गई[2]—

जोरी गांठि दुओ एक साथा ॥[3]

इस के पश्चात सात भांवरे दी गईं—

चाँद सुरुज सत भांवरि लेहीं ।[4]

निछावर की गई और दहेज दिया गया—

भइ भाँवरि, नेवछावरि, राज चार सब कीन्ह ।
दायज कहौं कहां लगि ? लिखि न जाय जत दीन्ह ॥[5]

यहां पर विवाह संस्कार के सामाजिक पहलू की समाप्ति हो गई। इस वर्णन में विशेष काव्यात्मकता नहीं है। मिलन एवं समर्पण की अपूर्व लालसा से भरे प्रेयसि और प्रियतम के हृदयों में विवाह के समय किन-किन अपूर्व मधुर भावनाओं का उदय हो रहा था तथा उस समय रत्नसेन के साथी और पद्मावती की सखियां तथा माता पिता क्या सोच रहे थे, इस का वर्णन कवि ने नहीं किया। काव्यात्मक दृष्टि से वह अधिक मार्मिक तथा मूल्यवान था।

गौने का भी कवि ने वर्णन किया है। परंतु इस में किसी सामाजिक कृत्य के विशेष दर्शन नहीं होते। लग्न शोधकर एक उचित दिन रत्नसेन पद्मावती को लेकर सिंहल से चित्तौड़ के लिए चल दिया।[6]

§ ३—दूसरा सामाजिक कृत्य भोज है। कवि ने दो भोजों का वर्णन अपने काव्य में दिया है—

(१) पद्मावती रत्नसेन के विवाह के अवसर पर गंधर्वसेन द्वारा

[1] वही

[2] पहली गांठ तो पंडितों अथवा अन्य संबंधियों ने जोड़ी थी। यह गांठ स्वयं वर वधू ने जोड़ी है।

[3] जा० ग्रं० पृष्ठ १४३

[4] वही

[5] वही

[6] वही पृष्ठ १८८-१९५

दिया गया भोज[1]

(२) रत्नसेन और अलाउद्दीन का मेल हो जाने पर रत्नसेन द्वारा दिया गया भोज[2]

पद्मावती रत्नसेन के अवसर पर जो भोज गंधर्वसेन ने दिया था उस में पहले कपूर की-सी सुगंधवाला भात दिया गया और फिर झालर और मांड़े, फिर गरम गरम और मुलायम पूड़ियां दी गईं—

पहले भात परोसे आना। जनहुँ सुबास कपूर बसाना॥
झालर मांडे आए पोई। ....॥
लुचुई और सोहारी धरी। एक तो ताती औ सुठि कोंवरी॥[3]

उस के पश्चात पकवान मिले—

खँडरा बचका औ डुभकौरी। बरी एकोतर सरे, कोहँडौरी॥
पुनि सँधाने आए बसौंधे। दूध दही के खुरँडा बाँधे॥[4]

कवि सब की तो सूची भी नहीं दे सकता—

औ छप्पन परकार जो आए। नहिं अस देख न कबहूँ खाए॥[5]

इन व्यंजनों के पश्चात—

पुनि जाउरि पछियाउर आई। घिरित खाँड के बनी मिठाई॥[6]

ये व्यंजन आदि तो खूब दिए गए परंतु बाजा नहीं बजाया गया। राजा लोग बिना बाजों के तो खाते ही नहीं हैं—

जेंवन आवा, बीन न बाजा। बिनु बाजन नहिं जेंवै राजा॥[7]

वे कहते हैं—

तुम्ह पंडित जानहु सब भेदू। पहिले नाद भएउ तब बेदू।[8]

उत्तर में उन को हठयोगी व्याख्या समझाई गई—

[1] वही पृष्ठ १४०-२
[2] वही पृष्ठ २७७-२८२
[3] वही पृष्ठ १४०-१
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही

नाद, वेद, मद, पैंद जो चारी । काया महँ ते, लेहु बिचारी ॥[1]

बात समझ में आ गई । इस कारण सब शांत हो गए और सब ने शांति पूर्वक भोजन किया ।

यहाँ स्मरण यह रखना चाहिए कि यह हिंदुओं का भोज था । अलाउद्दीन रत्नसेन वाला भोज मुसलमान का है । अतः यहाँ तो मांस का नाम भी नहीं है और वहां पहले ही कवि कहता है—

छागर मेढ़ा बड़ और छोटे । धरि धरि आने जहँ लगि मोटे ॥
हरिन, रोझ, लगना बन बसे । चीतर गोइन, झोंझ औ ससे ॥
तीतर, बटई, लवा न बांचे । सारस, कूज, पुछार जो नाचे ॥
धरे परेवा पंडुक हेरी । खेहा, गुडरू और बगेरी ॥[2]

इसी प्रकार कवि ने जानवरों एवं पक्षियों की एक लम्बी सूची हमारे सामने रखी है । इस के पश्चात कवि रोहू[3], सिधरी[4], सौरी[5], टेंगरा[6], सींगी[7], भाकुर[8] पथरी[9], बनगरी[10] आदि मछलियों की सूची रखता है । इस के पश्चात कवि ने पूरियों[11], चावलों[12] आदि की सूची दी है । इसी लम्बी सूची को लेकर किसी अच्छे पाक शास्त्र ज्ञाता की सहायता से यह जाना जा सकता है कि मध्ययुग में कौन-कौन से व्यंजन एवं खाद्य पदार्थ खाए जाते थे और अब उन में कौन-कौन से प्रचलित हैं । इस वर्णन में काव्यात्मक सरसता का अभाव है ।

इस भोज में किसी सामाजिकता के दर्शन दुर्लभ हैं ।

§ ४—तीसरा सामाजिक कृत्य जौहर है ।

[1] वही पृष्ठ १४२
[2] वही पृष्ठ २७७
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही
[9] वही
[10] वही
[11] वही पृष्ठ २७८
[12] वही

जौहर में पहले पद्मावती और नागमती सिर के बाल खोले हुए अरथी के साथ गईं। वे जाते हुए रोती भी जाती थीं और बाजे भी बजते जाते थे। चिता रचकर उन्हों ने दान दिया और फिर सात बार भांवरें लीं फिर चिता के ऊपर खाट रखी और रत्नसेन को गले लगाए हुए दोनों लेट गईं—

पद्मावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी ॥[1]

× ×

छोरे केस मोति लर छूटी।[2]

× ×

एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दुसरे होइ ओर-निबाहू ॥[3]

× ×

सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भांवरि लीन्हा ॥[4]

× ×

लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ी दुवौ कंत गर लाई ॥[5]

उस के पश्चात चिता में आग लगाई गई और—

छार भईं जरि, अंग न मोरी।[6]

कवि इस का कारण बतलाता है—

दुवौ महा सत सती बखानी।[7]

[1] वही पृष्ठ ३३९
[2] वही
[3] वही पृष्ठ ३४०
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही पृष्ठ ३३९

जौहर की प्रथा का एक दूसरा कारण एक जर्मन विद्वान श्री० हरशेफेल्ड ने अपनी पुस्तक वीमन ईस्ट एण्ड वेस्ट में दिया है कि वास्तव में यह एक सजा थी जो कि स्त्रियों को दी जाती थी क्यों कि पति की मृत्यु का उत्तरदायित्व पत्नी पर ही रखा जाता था। यदि पत्नी पति की ठीक सेवा एवं पालन करती तो पति नहीं

इन तीन सामाजिक कृत्यों में सब से अधिक काव्यात्मक तीसरा है। उसका वर्णन अन्यत्र किया गया है। पहला और दूसरा तनिक भी काव्यात्मक नहीं। स्मरणीय यह है कि ये तीनों ही कृत्य हिंदू समाज के हैं। इन में कोई भी सामाजिक कृत्य इस्लामी समाज का नहीं है।

मर सकता था। इस पुस्तक का ग्रीन महोदय ने अंगरेजी में अनुवाद किया है।

नगर

§ १—नगर-वर्णन में कवि ने दो वस्तुओं का वर्णन किया है—

१. द्वीप का वर्णन[1]

२. नगर का वर्णन[2]

इन दोनों ही का विश्लेषण हम इस परिच्छेद में करेंगे।

§ २—ये वर्णन हमें सिंहल द्वीप संबंधी ही मिलते हैं। चित्तौर या दिल्ली के ये वर्णन कवि ने नहीं दिए। इन वर्णनों में दो प्रकार के वर्णन हैं—

१. प्रकृति वर्णन

२. अन्य वर्णन

§ ३—प्रकृति-वर्णन नगर के वैभव का वर्णन करने के लिए है। उस का विश्लेषण हम पिछले परिच्छेद में कर आए हैं। अन्य वर्णन निम्न वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—

१. सन्यासियों का वर्णन

२. पनहारियों का वर्णन

३. हाट का वर्णन

§ ४—सन्यासियों का वर्णन करते हुए कवि उन की सूची ही अधिकतर देता है—

मठ मण्डप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे॥
कोइ सु ऋषीश्वर कोइ संन्यासी। कोई राजमती बिसवासी॥
कोई ब्रह्मचार पथ लागे। कोइ सो दिगंवर बिचरहिं नाँगे॥

[1] सिंघलदीप-कथा अब गावौं
जा० ग्रं० पृष्ठ १२

[2] सिंघल नगर देखु पुनि बसा।
वही पृष्ठ १६

कोई सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देवी सती॥
कोइ सुरसती कोई जोगी। कोइ निरास पथ बैठ बियोगी॥
सेवरा, खेवरा, बानपर. सिध, साधक, अवधूत।
आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत॥[1]

इस में कुछ सम्प्रदायों के सन्यासियों की सूची है। मध्ययुग में इन सन्यासियों एवं साधुओं का नगर में पर्याप्त स्थान होगा। तभी जायसी ने इन की सूची यहाँ पर दी है।

§ ५—पनिहारियों का वर्णन भारतीय साहित्य एवं जीवन की सर्वथा अपनी वस्तु है। जायसी पनिहारियों के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं—

पानि भरै आवहिँ पनिहारी। रूप सरूप पदुमिनी नारी॥[2]

पद्मिनी नारी की विशेषताएँ भी कवि देता है—

पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं॥[3]

कवि कुछ नख-शिख भी उन का देता है—

लंक-सिंघनी, सारँग नैनी। हंसगामिनी कोकिलबैनी॥[4]

× ×

केस मेघावर सिर ता पाईं। चमकहिँ दसन बीजु कै नाईं॥[5]

कवि उन का वर्णन और करता है। उसे केवल नख-शिख देकर ही संतोष नहीं है—

आवहिं झुण्ड सो पातहिं पाँती। गवन सोहाइ सु भाँतिहि भाँती॥
कनक कलस मुखचन्द दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं॥[6]

और

जा सहुँ वै हेरैं चख नारी। बाँक नैन जनु हनी कटारी॥[7]

[1] वही पृष्ठ १४
[2] वही पृष्ठ १५
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही

पनिहारियों के इस सौन्दर्य के वर्णन का लक्ष्य एक दूसरा है। कवि उसे भी सच्चाई से कह देता है—

माथे कनक गागरी, आवहिं रूप अनूप।
जेहि के असि पनहारी, सो रानी केहि रूप ? ॥[1]

§ ६—हाट के वर्णन में कवि ने निम्नलिखित वस्तुओं का वर्णन किया है—

१—हीरा मोती का व्यवसाय
२—वेश्या
३—मालिन
४—गंधी
५—पंडित
६—नाच-कूद
७—चिरहटा
८—पखंडी
९—नाटक-चेटक कला
१०—ठग

सोने, हीरा, मोती का व्यवसाय राजा गंधर्वसेन के ऐश्वर्य व्यंजित करने के लिए वर्णित है। सोने के विषय में कवि कहता है—

कनक हाट सब कुहकुहँ लीपी। बैठ महाजन सिंघलदीपी॥
रचहिं हथौड़ा रूपन ढारी। चित्र कटाव अनेक सँवारी॥[2]

और हीरा-मोती के लिए वह कहता है—

रतन पदारथ मानिक मोती। हीरा लाल सो अनवन जोती॥[3]

इस के अतिरिक्त भी कुछ और वस्तुएँ भी हाट में हैं—

औ कपूर बेना कस्तूरी। चंदन अगर रहा भरपूरी॥[4]

[1] वही
[2] वही पृष्ठ १७
[3] वही
[4] वही

कवि वहाँ पर व्यापारियों एवं ग्राहकों का भी वर्णन करता है—

कोई करे वेसाहनी, काहू केर विकाइ।
कोई चलै लाभ सन, कोई मूर गँवाइ ॥[1]

कवि यह भी कहता है—

जिन एहि हाट न लीन्ह वेसाहा। ताकहँ आन हाट कित लाहा ॥[2]

कवि वेश्याओं का वर्णन करता है। इस में पहले तो उन का रूप बतलाता है—

मुख तमोल, तन चीर कुसुंभी। कानन कनक जड़ाऊ खुंभी ॥[3]

उन के हाथों में वीणा है—

हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहीं। नर मोहहिं सुनि, पैग न जाहीं ॥[4]

वे नयनों के तीर से भी मनुष्य को आकर्षित करती हैं—

भौंह धनुष, तिन्ह नैन अहेरी। मारहिं बान सान सौं फेरी ॥[5]

उन की मुस्कुराहट भी उन का एक अस्त्र है—

अलक कपोल डोल, हँसि देहीं। लाइ कटाछ मारि जिउ लेहीं ॥[6]

वे अपनी कंचुकी में मानो पांसे रखती हैं—

कुच कँचुक जानौ जुग सारी। अंचल देहिँ सुभावहिँ ढारी ॥[7]

और

केत खेलार हार तेहि पासा। हाथ झारि उठि चलहिँ निरासा ॥[8]

उन के व्यवहार के विषय में कवि कहता है—

चेटक लाइ हरहिँ मन जब लहि होइ गथ फेंट।
साँठ नाठि उठि भए बटाऊ, ना पहिचान न भेंट ॥[9]

[1] वही
[2] वही
[3] वही
[4] वही
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही
[9] वही पृष्ठ १८

मालिन के विषय में वह बतलाता है—

लेइ के फूल बैठि फुलहारी। पान अपूरब धरे सँवारी॥[१]

गंधी भी वहां है—

सोंधा रुचै बैठ ले गाँधी। फूल कपूर खिरौरी बाँधी॥[२]

पंडित जी अनुपस्थित नहीं हैं—

कतहूँ पंडित पढ़हिँ पुरानू। धरम पंथ कर करहिँ बखानू॥[३]

पता नहीं ये पंडित हिंदू थे और पुराण षोडश पुराणों में से थे या उसमान की तरह कोई पंडित[४] (मौलवी) थे और कुरान की तरह का कोई पुराण[५]। बाजार में नाच कूद हो रहा है—

कतहूँ नाच कूद भल होई।[६]

बहेलिया भी वहाँ है—

कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा।[७]

कठपुतली वाला पखंडी भी मौजूद हैं—

कतहुँ पखंडी काठ नचावा।[८]

नाटक एवं संगीत भी वहाँ हो रहा है—

कतहूँ नाद सबद होइ भला। कतहूँ नाटक चेटक-कला॥[९]

ठग अनुपस्थित नहीं हैं—

कतहूँ काहु ठगविद्या लाई। कतहुँ लेहिँ मानुष बौराई॥

१ वही

२ वही

३ वही

४ कवि ने एक स्थल पर उसमान को पंडित कहा है—

पुनि उसमान पँडित बड़ गुनी

वही पृष्ठ ६

५ कवि ने एक स्थल पर कुरान को पुरान कहा है—

लिखा पुरान जो आयत सुनी

—वही

६ वही पृष्ठ १८

७ वही

८ वही

९ वही

घरपट चोर गँठिछोरा मिले रहहिँ ओहि नाच।
जो ओहि हाट सजग भा गथ ताकर पै बांच ॥[1]

§ ६—इस प्रकार कवि ने नगर का वर्णन किया हैं। हम देखते हैं कि यहाँ पर कवि की रुचि एवं लक्ष्य दोनों कुछ अपरिष्कृत से रहे हैं। नगर के जीवन में और भी बहुत सी वस्तुएँ भी होंगी जो वर्णित हो सकती थीं। परंतु कवि ने जैसे अपने को सीमित कर लिया है। फलतः उस का नगर वर्णन किसी अपढ़ ग्रामीण को भले ही रुचे साहित्य के एक विद्यार्थी को वह किसी भी प्रकार न तो विशद ही प्रतीत होगा और न मार्मिक।

गढ़

§ १—मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावती में केवल दो गढ़ों का ही वर्णन किया है—

१—सिंहल गढ़

२—चित्तौर गढ़

§ २—दिल्ली के गढ़ का कोई भी वर्णन नहीं मिलता। कथा प्रसंग के अनुसार वह आवश्यक भी नहीं है। दोनों गढ़ों के वर्णन में कुछ तो समानताएँ कवि ने दी हैं और कुछ विभिन्नताएँ। समानताएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं—

१—गढ़ों में प्राप्त वस्तुओं की समानता

२—गढ़ों की बनावट में समानता

§ ३ पहले भाग में निम्न वस्तुएँ हमें मिलती हैं—

१—घड़ियाल

२—राज सभा

३—सिंह की मूर्तियाँ

४—ताल-तलाव

५—बहुत से महल

६—गढ़ की बनावट

७—वृक्ष

घड़ियाल के विषय में कवि चित्तौर गढ़ वर्णन में कहता है—

सातौं पँवरी कनक-केवारा। सातौ पर बाजहिँ घरियारा ॥[1]

और आगे कुछ नहीं कहता। परंतु सिंहल गढ़ वर्णन में तो कवि इस घड़ियाल के वर्णन को अति महत्वपूर्ण बना देता है।

[1] जा० ग्रं० पृष्ठ २८३

नव पौरी पर दसवँ दुआरा । तेहि पर बाज राज-घरियारा ॥[1]

कवि इस के बजने की भी चर्चा करता है—

घरी सो बैठि गनै घरियारी । पहर पहर सो आपनि बारी ॥
जबहिं घरी पूजी तेहिं मारा । घरी घरी घरियार पुकारा ॥[2]

वह क्या पुकारता है—

परा जो डांड जगत सब डांड़ा । का निचिंत माटी कर भांड़ा ? ॥
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ कांचे । आएहु रहै न थिर होइ बांचे ॥
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ । का निचिंत होइ सोउ बटाऊ ? ॥[3]

इस प्रकार सिंहल गढ़ का घड़ियाल चित्तौड़ के घड़ियाल से अधिक महत्वपूर्ण एवं गंभीर है । परन्तु इन दोनों वर्णनों में से कोई सजीव नहीं है । इन वर्णनों को पढ़ कर न तो उन घड़ियालों का ही कोई चित्र हमारे सामने खिंचता है और न उन के स्वर की प्रतिध्वनि ही हमारे कानों में गूँजती है । हम ने पीछे बतलाया है कि जायसी ने प्रारंभ में तो यह आख्यान एक अन्योक्ति के रूप में लिखना प्रारंभ किया परंतु उसे वह आगे निबाह नहीं सका । सिंहल गढ़ वर्णन दूसरे खंड में है और चित्तौर गढ़ वर्णन छियालीसवें में । इस कारण सिंहल गढ़ के घड़ियाल वर्णन में कुछ व्यंजनात्मकता है परंतु चित्तौर गढ़ में नहीं ।

चित्तौड़ की राजसभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

चढ़ि गढ़ ऊपर संगति देखी । इन्द्रसभा सो जानि बिसेखी ॥[4]

इस पंक्ति के आगे वह राजसभा की बात नहीं कहता । सिंहल गढ़ वर्णन में वह कहता है—

राज सभा पुनि देखि बईठी । इन्द्रसभा जनु परि गै डीठी ॥[5]

वह इस वर्णन में कुछ सजीवता उत्प्रेक्षा की सहायता से भरने की

[1] वही पृष्ठ १९

[2] वही

[3] वही

[4] वही पृष्ठ २८४

[5] वही पृष्ठ २१

कोशिश करता है—

धनि राजा असि सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी॥[१]

वह सभासदों का वर्णन करता है—

मुकुट बाँधि सब बैठे राजा। दर निसान नित जिन्हके बाजा॥
रूपवंत, मनि दिपै लिलारा। माथे छात, बैठ सब पारा॥[२]

कवि फिर इस सभा के वर्णन का एक उत्प्रेक्षा देकर कुछ सजीव-सा बनाता है—

मानहुँ कँवल सरोवर फूले। सभा क रूप देखि मन भूले॥[3]

राजसभा ऐश्वर्य में केवल ये सभासद ही नहीं है। कवि आगे कहता है—

पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगँध बास भरि रही अपूरी॥[४]

वहाँ पर राज सिंहासन भी है—

माँझ ऊँच इन्द्रासन साजा। गंध्रबसेन बैठ तहँ राजा॥[५]

कवि ने चित्तौर के वर्णन में भी राज सिंहासन दिया है—

कनक-छत्र सिंहासन साजा। पैठत पँवरि मिला लेइ राजा॥[६]

सिंहल में भी छत्र है। चित्तौर का छत्र कितना ऊँचा है यह कवि ने नहीं दिया। सिंहल गढ़ में दिया है—

छत्र गगन लगि ताकर, सूर तवै जस आप।
सभा कँवल अस विगसे, माथे बड़ परताप॥[७]

दोनों गढ़ों में सिंह की मूर्तियाँ है। सिंहल गढ़ के विषय में कवि कहता है—

पौरिहि पौरि सिंह गढ़ि काढ़े।[८]

१ वही
२ वही
3 वही
४ वही
५ वही
६ वही पृष्ठ २८३
७ वही पृष्ठ २१
८ वही पृष्ठ १९

चित्तौड़ में भी—

चार कुंड दुहुँ दिसि गाढ़ि काढ़े ।[1]

दोनों गढ़ों में सर हैं । चित्तौड़ में कवि कहता है—

पास पास सरवर चहुँ पाला ।[2]

सिंहल में भी—

और कुण्ड एक मोती चूरू ।[3]

इस की विशेषता भी वह बतलाता है—

पानी अमृत कीच कपूरू ।[4]

सिंहल में बहुत से महल हैं—

मँदिर मँदिर सब के चौपारी ।[5]

चित्तौड़ में भी वही बात है—

मँदिर मँदिर फुलवारी बारी ।[6]

इन में राजकुमार खेलते हैं—

पाँसा सारि कुँवर सब खेलहिं ।[7]

× ×

बैठि कुँवर सब खेलहिं सारी ।[8]

जायसी सिंहल गढ़ के विषय में बहुत ही स्पष्ट कथन शिव के मुख से करवाते हैं—

गढ़ तस बाँक जैसि तोर काया । पुरुष देखि ओही कै छाया ॥[9]

× ×

1 वही पृष्ठ २८४
2 वही
3 वही पृष्ठ १९
4 वही
5 वही पृष्ठ २०
6 वही पृष्ठ २८४
7 वही
8 वही पृष्ठ २८
9 वही पृष्ठ १०५

नौ पौरी तेहि गढ़ मँझियारा । औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा ॥
दसवँ दुवार गुपुत एक ताका । अगम चढ़ाव, बाट सुठि बाँका ॥[1]

× ×

गढ़ तर कुण्ड, सुरँग तेहि माहाँ । तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाहाँ ॥[2]

कवि ने शरीर की हठयोगी व्याख्या गढ़ पर घटाई है। सिंहल दीप वर्णन खण्ड में भी वह कहता है—

नव पौरी बाँकी, नव खंडा । नवो जो चढ़ै जाइ बरम्हंडा ॥[3]

§ ४—चित्तौड़ गढ़ के वर्णन में यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कहता परंतु फिर भी बात कुछ ऐसी ही बतलाता है—

पँवरी सात सात खँड बाँके । सातौ खंड गाढ़ दुइ नाके ॥[4]

× ×

सात खंड तिन्ह सातौं पँवरी । तब तिन्ह चढ़ै फिरै नौ भँवरी ॥[5]

यहाँ पर बात अत्यंत स्पष्ट तो नहीं है परंतु फिर भी समान-सी ही प्रतीत होती है। इस चित्तौड़ गढ़ में एक वृक्ष भी है—

चंदन बिरिछ सोह तहँ छाहाँ ।[6]

परंतु सिंहल में चंदन न होकर

कंचन बिरिछ एक तेहि पासा ।[7]

वास्तव में जग जाहिर बात है न तो राजपूताने में चंदन का पेड़ हो सकता है और न कहीं पर भी कंचन पेड़। परंतु सिंहल को तो कवि कैलाश बनाना चाहता है—

सिंघलदीप आहि कैलासा ।[8]

इसी कारण कवि ने वहाँ कंचन का पेड़ बतलाकर यह भी कह दिया—

[1] वही
[2] वही
[3] वही पृष्ठ १८
[4] वही पृष्ठ २८३
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही पृष्ठ ४५

जस दलपनक हूँत कविलासा ।[1]

इस वृक्ष का वह एक संक्षिप्त चित्र भी देता है—

मूल पतार, सरग ओहि साखा । अमर बेलि को पाव, को चाखा ? ॥
चाँद पात और फूल तराईं । होइ उजियार नगर जहँ ताईं ॥[2]

उस के फल भी साधारण नहीं हैं—

वह फल पावै तप करि कोई । बिरिध खाइ तौ जोबन होई ॥[3]

इसी कारण

राजा भए भिखारी सुनि वह अमृत भोग ।
जेहि पावा सो अमर भा, ना किछु व्याधि न रोग ॥[4]

§ ५—इन समानताओं के अतिरिक्त कुछ वस्तुएँ असमान भी हैं । सिंहल गढ़ में दो नदियाँ हैं—

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी ।[5]

चित्तौड़ में न तो नदियाँ हैं और न नदियों की भाँति कोई अन्य वस्तु । सिंहल में पनिहारियाँ भी हैं—

पनिहारी जैसे दुरपदी ।[6]

इस के अतिरिक्त कवि ने सिंहल गढ़ का वर्णन करते समय महल, रनिवास तथा राजद्वार का भी वर्णन किया है । महल के विषय में वह कहता है—

साजा राजमँदिर कैलासू । सोने कर सब धरति अकासू ॥
सात खंड धौराहर साजा । उहै सँवारि सकै अस राजा ॥
हीरा ईंट, कपूर गिलावा । औ नग लाइ सरग लेइ आवा ॥[7]

इस में चित्र भी बने हैं—

[1] वही पृष्ठ १९
[2] वही
[3] वही पृष्ठ २०
[4] वही
[5] वही पृष्ठ १९
[6] वही
[7] वही पृष्ठ २१–२२

जावत सबै उरेह उरेहे । भाँति भाँति नग लाग उवेहे ॥
भा कटाव अस अनबन भाँती । चित्र कोरि कै पाँतिहि पाँती ॥[१]

कवि खंभों का भी वर्णन करता है—

लाग खंभ-मनि-मानिक जरे । निसिदिन रहहिँ दीप जनु बरे ॥[२]

यह प्रकाश साधारण नहीं है। इस प्रकाश के आगे चाँद सूर्य का प्रकाश भी मंद हो जाता है—

देखि धौराहर कर उजियारा । छपि गए चाँद सुरुज औ तारा ॥[३]

रनिवास के विषय में कवि कहता है—

बरनौं राजमँदिर रनिवासू । जनु अछरीन्ह भरा कबिलासू ॥
सोरह सहस पदमिनी रानी । एक एक तें रूप बखानी ॥[४]

राज्य द्वारा का वैभव वर्णन करते हुए मलिक मुहम्मद जायसी लिखते हैं—

पुनि चलि देखा राज-दुआरा । मानुप फिरहिँ पाइ नहिँ बारा ॥[५]

वहाँ इतना ही नही है कि मनुष्य द्वार न पा सकें वरन् हाथी घोड़े भी बहुत हैं—

हस्ति सिंघली बाँधे बारा ।[६]

कवि इन का वर्णन उत्प्रेक्षा के सहारे करता है कि मानो सभी सजीव पहाड़ के समान खड़े हैं—

जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा ।[७]

वह उन का अभिधात्मक वर्णन भी करता है—

कौनौ सेत पीत रतनारे । कौनौ हरे, धूम औ कारे ॥[८]

कवि अपने शैली में कहता है—

१ वही पृष्ठ २२
२ वही
३ वही
४ वही
५ वही पृष्ठ २०
६ वही
७ वही
८ वही

बरनहिँ धरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठि जनु ठेघा ॥[१]

× ×

धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हालि।
कुरुम टुटै, भुइँ फाटै तिन्ह हस्तिन्ह के चालि ॥[२]

घोड़ों के विषय में वह कहता है—

पुनि बाँधे रजबार तुरंगा। का बरनौं जस उन्हके रंगा ॥
लील, समंद चाल जग जाने। हाँसुल भौंर, गियाह बखाने ॥
हरे कुरंग महुअ बहु भांती। गरर, कोकाह, बुलाह सु पाँती ॥[३]

कवि इन की चाल के विषय में कहता है कि वे मन से भी तेज़ चलते हैं—

मन तें अगमन डोलहिँ बागा।[४]

कवि इन का एक सुंदर चित्र देता है। ये स्थिर नहीं रह सकते। इसी कारण जब इन्हें रोक दिया जाता है तो ये क्रोध से लोहा चबाने लगते हैं—

थिर न रहहिँ रिस लोह चबाहीं। भाँजहिँ पूँछ सीस उपराहीं ॥[५]

कवि ने इन वर्णनों के अतिरिक्त गढ़ में गढ़पतियों का भी वर्णन दिया है—

गढ़ पर बसहिँ झारि गढ़पती। असुपति, गजपति, भु-नर-पती ॥
सब धौराहर सोने साजा। अपने अपने घर सब राजा ॥[६]

चित्तौर के वर्णन में कुआ-बावरी की बात भी कहता है—

कुआँ बावरी भाँतिहि भाँती।[७]

और मठ-मण्डप भी बतलाता है—

[१] वही
[२] वही
[३] वही पृष्ठ २०–२१
[४] वही पृष्ठ २१
[५] वही
[६] वही पृष्ठ २०
[७] वही पृष्ठ २८४

सठ मंडप साज चहुँ पाँती ॥[1]

इस के अतिरिक्त कवि ने निसौत के मन्दिरान का विशेष वर्णन दिया है—

आस पास सरवर चहुँ पासा । मांझ मंदिर जनु लाग अकासा ॥
कनक सँवारि नगन्ह सब जरा । गगन चंद जनु नखतन्ह भरा ॥
सरवर चहुँ दिसि पुरइनि फूली । देखत बारि रहा मन भूली ॥[2]

उस ने दासियों का भी वर्णन किया है—

जनु निसरीं सब बीर बहूटी । रायमुनी पींजर हुँत छूटीं ॥[3]

वास्तव में इस वर्णन का लक्ष्य कवि का दूसरा है—

जाकर अस धौराहर सो रानी केहि रूप ।[4]

इसी कारण कवि ने चित्तौड़ को भी कैलास अर्थात् स्वर्ग बतलाया है—

साह मन्दिर अस देखा जनु कैलास अनूप ।[5]

§ ५—संक्षेप में गढ़ वर्णन की यही रूप रेखा है । हम देखते हैं कि दोनों गढ़ों के वर्णन में कोई मौलिक अंतर नहीं है । सिंहल गढ़ का वर्णन कवि ने पहले दिया है इस कारण वह अधिक विशद है । चित्तौर गढ़ का वर्णन उसके बाद होने के कारण पुनरावृत्ति के भय से साधारण ही रह गया है । कवि के पास संभवतः इतनी कल्पना शक्ति न थी कि वह दोनों में कोई मौलिक अंतर दिखलाकर दोनों वर्णनों को सजीव बना सकता ।